प्रस्तावना

जीवन मे जैसे शरीर के लिये चिकित्सक की जरूरत होती है उसीप्रकार आत्मचिकित्सक की जरूरत है। उसे गुरु कहते है। इसका यह मतलब नही है कि गुरु न होगा तो आत्मचिकित्सा न होगी या आत्मोद्धार न होगा। जैसे मनुष्य बिना चिकित्सक के भी स्वस्थ रह सकता है उसी तरह विना गुरु के भी सभ्य सुसस्कृत रह सकता है, अपनी उलझने सुलझा सकता है। मनुष्य अपना गुरु स्वयं आप है। गुरु न होगा तो कल्याण न होगा इसलिये कोई न कोई गुरु बना ही लेना चाहिये यह समझना भूल है। गुरु के विषयमे सत्येश्वर गीता में जो मैने लिखा है वह ध्यान मे रखने योग्य है।

जो सेवापथ मे बढा, जिसके मन ईमान।
सत्पथमे लेजाय जो, वह है सुगुरु महान ॥१२७॥

किसी न किसी तरह गुरु होना ही चाहिये, इसका विरोध करने के लिये कहा है—

अगर न सद्गुरु मिलसके, तो खुद को गुरु मान।
भूखा ही रहना भला, भला नही विष पान।

इसप्रकार गुरु खूब जाच परख कर बनाना चाहिये। वह श्रद्धेय जरूर हो, फिर भी आख बन्द करके उसकी बात नही मानलेना है। जितनी बुद्धि अपने पास हो उतनी जाच जरूर कर लेना चाहिये। हा! व्यवहार मे कुछ बाते ऐसी होती है जिनके बारे मे निर्णय नही हो पाता, अक्ल काम नही करती, ऐसी अवस्था मे योग्य गुरु की आज्ञा मानकर उलझनें सुलझा लेना उचित है।

कभी कभी आपस के बहुतसे झगड़े अपने आप नही सुलझते। अहकार आदि के कारण भी आपसी सम्बन्ध सुधारने मे दिक्कत जाती है। ऐसे अवसर पर सभी का श्रद्धास्पद कोई गुरु हो तो उसके उपदेश और प्रभाव से सब मनोमालिन्य धोया जासकता है। परन्तु उस गुरुके विषय मे इतनी श्रद्धा होना चाहिये कि कोई बात अपनी रुचि या इच्छा के विरुद्ध हो तो इसी कारण उसे पक्षपाती न मानले तभी गुरु से लाभ उठाया जासकेगा।

साधारणत: गुरु मे दो बाते मुख्य है :-

१- अपनी अपेक्षा उसको मानव जीवन का, उसकी समस्याएँ सुलझाने का अधिक ज्ञान हो।

२- शिष्यके साथ उसकी आत्मीयता हो। वह सहानुभूति रखता हो। शिष्य के रहस्य की बात प्रगट न करे। स्वार्थ के लिये शिष्य की कमजोरियो का दुरुपयोग न करे।

यो साधारणत: गुरु शिष्य का नाता पिता पुत्र का नाता है परन्तु यह आवश्यक नही है कि सब जगह ऐसा ही नाता हो। छोटे बड़े दो भाईयो का या मित्रो का भी नाता होसकता है। पुराने जमाने सरीखा राजा पुरोहित का भी नाता होसकता है। मुख्य बात नाते के स्वरूप की नही है, उपर्युक्त दो बातो की है।

इस पुस्तक मे एक ऐसे ही गुरुदेव को नायक बनाया गया है और लोगो के जीवन की समस्याएँ सुलझाई गई है। इस निमित्त से प्रत्येक प्रकरण छोटी छोटी कहानी या मर्मस्पर्शी सवाद बनगया है। अधिकतर प्रकरण कौटुम्बिक या सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालते है। एकाध में आध्यात्मिक चर्चा भी आगई है। कुछ बाते उग्र सामाजिक क्रान्तिका रूप पेश करती है। परन्तु अगर परम्परा का मोह त्याग कर नि.पक्ष दृष्टि से लोग विचार करे, नारी के या नारीपक्ष के साथ न्याय करने की व्याव-हारिकता का विचार करे तो वे सुलझाव असह्य या चौकानेवाले न मालूम होगे।

इन प्रकरणो मे कही कही सत्यसमाज का नाम भी आया है। जिससे मालूम हो कि इस प्रकार का सुलझा हुआ उदार सामाजिक जीवन सत्यसमाज मे है। इसका अर्थ इतना ही है कि सत्यसमाज को ऐसा ही उदार, नि:पक्ष न्यायोचित दृष्टिकोण रखने वाला, उसे व्यवहार मे उतारने वाला, समाज बनना है। कुछ अशो मे वह ऐसा है भी।

सगम मे समयसमय पर ये प्रकरण निकलते रहे थे। परन्तु इतनी उपयोगी सामग्री एक साथ सरलता से लोगो के पास पहुँचाने के लिये इसे पुस्तकाकार प्रकाशित किया जारहा है।

७ मम्मेशी ११९६६ — सत्यभक्त
४- २- ६६ — सत्याश्रम वर्धा

विषय सूची

शुद्धि

पृ- ९३ पर २३ वी पंक्तिके आगे जोड़ना

'गुरुदेव- बेटी, प्यार की परीक्षा हुए बिना मनमे किसीको वसा लेना ही अनुचित है।'

इसके बाद तरुणी का वक्तव्य है जो गुरुदेव का लिखा गया है।
छोटी छोटी प्रूफकी गल्तियाँ पाठक स्वयं समझ जायंगे।

गुरुदेव का शिक्षणालय

नरक और स्वर्ग के चित्रों की माला लिखते समय ऐसी बहुतसी समस्याएँ ध्यान में आईं जिन्हें नरक स्वर्ग के चित्रों के रूप में चित्रित नहीं किया जासकता, क्योंकि नरक और स्वर्ग के चित्र में परस्पर विरुद्ध दो सीमाओं के रूप बताने पड़ते हैं। परन्तु कुछ समस्याएँ ऐसी हैं जिन्हें सीमा के उग्र रूप में तो चित्रित नहीं किया जासकता परन्तु उनसे जीवन में अशान्ति द्वेष दुःख काफी बढ़ते हैं। और इतने पर भी उनके वास्तविक कारण लोगों की समझ में नहीं आते। प्रत्येक व्यक्ति दूसरों को दोषी समझकर दुनिया की स्वार्थपरता का राग अलापता रहता है। इस भ्रम के कारण परस्पर में काफी मनोमालिन्य असहयोग, अविश्वास घृणा आदि पैदा होजाते हैं। सभी अन्याय के शिकार होते हैं और अनेक सुविधाओं से वञ्चित रहते हैं। ऐसे भ्रमों का दूर करना और घटनाओं का न्यायोचित विश्लेषण करना, इस लेखमाला का कार्य है। धर्मशास्त्रों में जो सामान्य सन्देश होते हैं- प्रेम करो, विश्वास करो, सहयोग करो, सेवा करो, उदार बनो, विनीत बनो आदि, इनका जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ये तो धर्म की वर्णमाला है, जो आवश्यक तो हैं, पर बिलकुल प्रारम्भिक होने से बिलकुल अपर्याप्त हैं। इन सन्देशों को जीवन में उतारने के लिये, और समाज में फैलाने के लिये जिन कठिनाइयों तथा अव्यावहारिकताओं का सामना करना पड़ता है, और पद पद पर समझौता समन्वय और विश्लेषण से काम लेना पड़ता है उनका जब तक स्पष्टीकरण न होजाय, ब्यौरेवार पथ-प्रदर्शन न होजाय तब तक उपदेशों का कोई उपयोग नहीं। यही कारण है कि अधिकांश धर्मशास्त्रों में सामान्य सन्देश हजारों बार कहे जाने पर भी उनसे जनता का कोई पथ-प्रदर्शन नहीं होता। ऐसी बातें सुनने से कुछ पुण्य होता है इसी लोभ से लोग ऐसी बातें पढ़सुन लिया करते हैं। पर इस कल्पित पुण्य से व्यक्ति का तथा समाज का कोई विकास नहीं होता।

बड़े बड़े सामाजिक और राजनैतिक प्रश्नों से मनुष्य बहुत

बेचैन नहीं होता, क्योंकि उसकी जिम्मेदारी सारे समाज पर या राष्ट्र पर बटी होती है इसलिये एक व्यक्ति पर उसका सारा बोझ नहीं पड़ता, पर छोटे प्रश्न मनुष्य को बहुत बेचैन करते हैं। राष्ट्र की बड़ी से बड़ी क्षति से लोग उतने बेचैन नहीं होते जितने पड़ौसी के द्वारा किये गये साधारण दुर्व्यवहार से बेचैन होजाते है। इसलिये धर्मशास्त्र को जो जीवन की चिकित्सा करना है उसका मुख्य और विशाल क्षेत्र ये छोटी छोटी बातें या घटनाएँ ही हैं और इन्हीं के विषय में धर्मशास्त्रों में नहीं के बराबर लिखा है या ऐसा सामान्य निर्देश है जिससे कोई पथप्रदर्शन नहीं होता। धर्मशास्त्र के इस अधूरेपन को दूर करने के लिये भी यह लेखमाला लिखी जारही है।

१– गरीबपर अविश्वास

भोलानाथ गुरुदेव को नमस्कार करके मुँह लटकाये हुए बैठगया। उसके मनमें इतनी खिन्नता थी कि चेहरे पर उसकी छाया साफ दिख रही थी। गुरुदेव ने पूछा– क्यों भोले, आज इतने उदास क्यों हो ?

भोलानाथ ने कहा– आज कोई खास बात तो नहीं है गुरुदेव, कभी कभी अपनी गरीबी पर और समाज की दुर्दशा पर ध्यान चला जाता है तो चित्त बड़ा खिन्न होजाता है।

गुरुदेव– सचमुच गरीबी बड़े से बड़ा अभिशाप है और यह प्राकृतिक नहीं है सामाजिक है। इसमें कहीं कहीं व्यक्ति का भी दोष है पर अधिकांश दोष सामाजिक है। इसलिये तुम सरीखे विचारशील व्यक्ति का खिन्न होना स्वाभाविक है।

भोला– पर मुझे गरीबी का कष्ट इतना नहीं अखरता, जितना गरीबी के कारण होनेवाला दुर्व्यवहार खटकता है लोग भिखारी को भिक्षा देदेंगे, पर गरीब को उधार भी नदेंगे। अमीर कोसन्मान से ठहरायेंगे खिलायगे पिलायगे पर गरीब को पानी के लिये

भी घर में न घुसने देंगे, किसी के यहां रातभर ठहराना होतो न ठहरने देंगे। गरीब आदमी कितना भी निर्दोष हो पर ऐसा मालूम होता है कि गरीबी सब से बड़ा पाप है। गरीबी के इस अपमान से मेरा जी बहुत जलता है।

गुरुदेव- अपमान से जी जलना स्वाभाविक ही है। परन्तु इसमें अपराध उन लोगो का नहीं है जो अविश्वास करते है। इसमे अपराध लोगो के गिरते हुए चरित्र का है, अधिकांश स्थानो पर अविश्वसनीय व्यक्ति का है, तथा बहुत सा अपराध गरीबो की झूठी वकालत करनेवालों का भी है।

भोला— और अमीरों का कोई अपराध नहीं ?

गुरुदेव- अमीरों के अपराध दूसरे है पर इस मामले में अमीर गरीब का कोई भेद नहीं, क्योंकि अमीर ही गरीब का अविश्वास करते हों सो बात नहीं है किन्तु गरीब भी गरीब का अविश्वास करते है।

भोला- यह भी ठीक कहा गुरुदेव आपने। सचमुच गरीब भी गरीब का विश्वास नहीं करता पर ऐसा क्यों होना चाहिये ?

गुरुदेव- अविश्वास वर्गभेद के कारण नहीं किया जाता किन्तु विश्वासघात की सम्भावनाओं से किया जाता है। अपरिचितों पर या बहुतसे परिचित अमीरों पर भी विश्वास नहीं किया जाता और बहुतसे गरीबों पर भी विश्वास किया जाता है। यहां तक कि जितना विश्वास पशु पर कर लिया जाता है उतना मनुष्योंपर भी नहीं किया जाता। इसलिये वर्गभेद से इसका कोई सम्बन्ध नहीं ?

भोला- फिर भी साधारणतः अमीरों की अपेक्षा गरीबों पर ज्यादा अविश्वास किया जाता है।

गुरुदेव- हां ! इसमें कुछ तथ्य जरूर है। साधारणतः यह समझ लिया जाता है कि अमीर का पेट काफी भरा हुआ है इसलिये उसकी नियत छोटी मोटी चीज पर न डांलेगी, और डांलेगी

तो गरीब की अपेक्षा उसकी बदनामी अधिक होने से वह अधिक डरेगा। यद्यपि इस बात के अपवाद भी होते हैं फिर भी इसमें मनोवैज्ञानिक तथ्य भी काफी है। इसके लिये किसी को कुछ दोष नहीं दिया जासकता।

भोला- मतलब यह कि गरीबी में अभाव के कष्ट के साथ यह अपमान का कष्ट भी लगा रहेगा।

गुरुदेव- लगा तो रहेगा, पर लगा रहना न चाहिये। लेकिन इसका उपाय गरीबों और गरीबों के वकीलों के हाथ में है।

भोला- गरीबों का कौन वकील होगा ?

गुरुदेव- होते हैं। अमीरी के लिये व्याकुल किन्तु असफल रहने के कारण अमीरों से ईर्ष्या करनेवाले कुछ नादान दोस्त गरीबों के वकील होते हैं। वे कहा करते हैं कि गरीब चोरी क्यों न करे ? उसकी जरूरत है तो वह चोरी करेगा ही। वे ऐसी कहानियाँ लिखेंगे कि जिसमें चोरी और डकैती का कारण बताने के लिये उसकी गरीबी का चित्रण होगा। इसप्रकार चोर डकैत को वे निरपराध बताने की कोशिश करते हैं। फल इसका यह होता है कि गरीब आदमी चोरी डकैती करना अपना अधिकार समझने लगते हैं, पाप से शरमाना तक छोड़ देते हैं। पर कोई आदमी, चाहे वह अमीर हो चाहे गरीब; अपने यहां चोरी करने का यह अधिकार स्वीकार नहीं करता किन्तु गरीब को चोर समझकर उसका अविश्वास करने लगता है। अब इसमें अविश्वास करनेवाले का कोई अपराध नहीं।

भोला- पर इसमें गरीब का भी क्या अपराध है। वह श्रम करके भी आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर पाता, तब वह चोरी का रास्ता भी अपना लेता है।

गुरुदेव- पर जो चोरी का रास्ता अपना लेता है उसे लोग चोर समझें और चोर समझकर सतर्क रहें इसमें उसे अपमान क्यों समझना चाहिये ? रही आवश्यकता पूर्ति की बात, सो वास्तव में

यह सामाजिक अव्यवस्था का परिणाम है। जिसके लिये गरीब भी उतना ही अपराधी है जितना अमीर। देशमें जब गरीब ज्यादा हैं तब अपने बहुमत से उस अव्यवस्था को दूर करने के लिये तैयार क्यों नहीं होते ?

भोला- आप ही बतायें क्यों नहीं होते ?

गुरुदेव- इसलिये कि गरीब की मनोवृत्ति और अमीर की मनोवृत्ति में कोई फर्क नही है। उसे देश की गरीबी नहीं खटकती अपनी गरीबी खटकती है कि मै गरीब क्यों हूं, अमुक आदमी की तरह मैं अमीर क्यों नहीं ? उसे अमीर से ईर्ष्या है गरीब से सहानुभूति नहीं। इसलिये जब वह चोरी करता है तब गरीब अमीर का भेद नहीं करता, जिसकी चोरी करने का मौका मिलजाता है उसकी चोरी करलेता है। यहा तक कि अपने से अधिक गरीब की चोरी भी करजाता है। पर चोरी से न गरीब की समस्या हल होती है न राष्ट्र की समस्या, बल्कि उलझन ही बढ़जाती है।

भोला- उलझन तो पूरी है गुरुदेव !

गुरुदेव- पर वह सब अपने आप पैदा की गई है। देश का चरित्र ही गिरा हुआ है। और जब इस चरित्रभ्रष्ट की वकालत की जाती है तब चरित्र-भ्रष्टता बढ़ती ही जाती है, पर इससे मनुष्य भ्रष्ट ही होता है, उसका अपमान ही होता है वह विश्वास की सुविधाओं से वञ्चित होता है। इससे न उसकी गरीबी दूर होती है न देशकी। बेईमान देश, अपनी आर्थिक उन्नति नहीं कर सकता। और जब देश ही गरीब है तब अधिकांश व्यक्ति भी गरीब ही रहेंगे। वितरण गरीबीका होगा, अमीरी का नहीं। मुट्ठी भर अमीरों की अमीरी का वितरण सारे राष्ट्र में नहीं होसकता। एक मिटकर दूसरा बने यह होसकता है पर सब नहीं बन सकते।

भोला- तो इसकेलिये क्या किया जाय गुरुदेव !

गुरुदेव- ईमानदारी से अधिक से अधिक श्रम किया जाय ? और योग्य व्यवस्था के लिये उचित वितरण की व्यवस्था बनाई जाय। पर पहिली बात ईमानदारी की ईमानदारी बिना समृद्धि नहीं आसकती न गौरवशील जीवन बनसकता है। ईमानदारी मनुष्य का सुसंस्कार है। जो गरीबी में भी सम्भव है और अमीरी में भी। इसके बिना अमीर भी बेईमान होता है।

भोला— क्या ईमानदार रहकर गरीब गुजर कर सकेगा ?

गुरुदेव- बेईमान बनकर जैसा गुजर कर सकता है उससे कुछ न कुछ अच्छी तरह गुजर कर सकेगा। बेईमान सिर्फ दूसरों को ही नहीं लुटता किन्तु दूसरे बेईमानों से लुटता भी है इस तरह उसके पल्ले कुछ नही पडता। फिर बेईमान का मूल्य कम होता है इसलिये स्थायी रूपमें घाटा उसे सहना पड़ता है। इस प्रकार बेई-मानों का समाज फायदे में नहीं रहता। अपवाद रूपमें एकाध व्यक्ति फायदे मे रहता है तो उसके लिये बाकी लोगों को लुटना पडता है। यह भी समाज मे फैली हुई बेईमानी का दुष्परिणाम है। समाज के भीतर बेईमानी बसी होने से बेईमानी के विरोध में उसका पुण्य प्रकोप नष्ट हो गया है इसलिये बेईमानी पनपती है। वह न गरीबी हटा सकती है न विश्वस्तता का गौरव पैदा कर सकती है।

भोला- समझगया गुरुदेव ! गरीबी का रोना न गरीबी मिटासकता है न अपमान हटासकता है। उस के लिये तो हर हालतमे ईमानदारी चाहिये।

गुरुदेव— अब तुम ठीक समझगये भोले।

भोला— यह सब आपकी कृपा है गुरुदेव !

९ टुंगी ११९५८
२१-८-५८

सत्यभक्त
सत्याश्रम वर्धा

२– बहू की कृतज्ञता

दमयन्ती गुरुदेव को नमस्कार करके एक ओर बैठ गई। उसकी मुद्रा से मालूम होता था कि वह कुछ कहना चाहती है। उसके चेहरेपर कुछ खिन्नता थी। गुरुदेव ने पूछा— सब कुशल तो है दमयन्ती ? अब तो लड़के की शादी होजाने से तुम सासू जी बनगई तुम्हारी गिनती भी बुजुर्गों में होने लगी। अब खिन्नता किस बात की ?

दमयन्ती– चापर का लड्डू खाये सो पछताये न खाये सो पछताये।

गुरुदेव— तो तुम सासू बनकर पछतारही हो, सासूपन तुम्हें पच नही पाया ?

दमयन्ती— जब खुराक ही विषैली हो तो क्या पचे ?

गुरुदेव— यह तो सचमुच बड़े दुर्भाग्य की बात है। पर तुम्हें इस विषैलेपन का पता लगा कैसे ? बहू ने कोई दुर्व्यवहार किया ?

दमयन्ती— यों दुनिया की नजरों में कोई बड़ा दुर्व्यवहार तो नहीं किया पर मेरे प्रति कोई कृतज्ञता का भाव उसके मन में नहीं है इसी बात का काफी दुःख है !

गुरुदेव– पर कृतज्ञता तो किसी का उपकार करने के बाद ही पैदा होती है। परन्तु इन इनेगिने दिनो में बहू का तुमने क्या उपकार कर दिया जिससे कृतज्ञता की आशा करती हो।

दमयन्ती– बहू का नहीं किया तो लड़के का तो किया है। विधवा होजानेपर कैसी गरीबी मे मैने लड़के को पाल पोसकर तैयार किया जो आज उसीके काम आरहा है। क्या यह उपकार नहीं है ?

गुरुदेव– पर इस उपकार से बहू का वैसा सम्बन्ध नहीं है जैसा तुम समझरही हो। लड़का बहू के जितने काम आरहा है

उससे ज्यादा बहू लड़के के और तुम्हारे काम आरही है। लड़का अपने घर में है और मालिक है, बहू को घर छोड़ना पड़ा है मां बाप छोड़ना पड़े है, सब परिचन वर्ग छोड़ना पड़ा है, इतने त्याग के बाद उसे पूरी मालिकी नहीं- किन्तु सेवा के आदान प्रदान को सिर्फ जगह मिली है। यहां बहू उतन लाभ में नहीं है, जितने लाभ में तुम और लड़का है। इसलिये कृतज्ञ तो तुम्हें रहना है। तुमने बहू के लालनपालन के लिये कोई कष्ट नहीं उठाया फिर भी तैयार माल तुम्हें काम के लिये और घर बसाने के लिये मिलगया, इसमे तुमने उपकार क्या किया? उपकार लिया ही है। ऐसी अवस्था मे उससे कृतज्ञता की आशा क्यो करना चाहिये?

दमयन्ती– तो क्या घरमे अब मेरा कोई अधिकार न रहा गुरुदेव? आज तक लड़के के लिये मैने कष्ट ही कष्ट उठाये, और जब लड़का तैयार हुआ तब सारा अधिकार बहू के हाथ मे चला-गया, मै निराधार होगई।

(यह कहते कहते दमयन्ती का गला भरआया और उसे आंचल से आंसू भी पोछना पड़े)

गुरुदेव ने सहानुभूति के स्वर में कहा–यहां तुम भूलती हो दमयन्ती। जिसका उपकार नहीं किया उससे कृतज्ञता भले ही न मिले, परन्तु कौटुम्बिकता के नियमानुसार विनय शिष्टाचार सेवा आदि तो मिलेगी ही और मर्यादा के भीतर उचित अधिकार भी रहेगा। इसमे निराधारता की क्या बात है? घरमे तुम्हारा अधिकार और स्वामित्व सब से बड़ा है, क्या इसको बहूने चुनौती दी?

दमयन्ती– अभी तक तो नहीं दी।

गुरुदेव- अगर न्याय से रहोगी और विवेक से काम लोगी तो आगे भी कोई न देगा।

दमयन्ती– आपकी कृपासे विवेक से तो काम लेती ही हूं।

गुरुदेव– विवेक से काम लेने की कोशिश जरूर करती हो,

पर कभी कभी भूलजाती हो। जहां सिर्फ विनय शिष्टाचार और सेवा की ही आशा करना चाहिये वहां कृतज्ञता की भी आशा करना विवेक से काम लेना नही है। यहीकारण है कि बहू के बारेमे तुम्हें इस प्रकार शिकायत करने का मौका आया है।

दमयन्ती– पर मैंने कोई बहुत कठोर बात तो कही नहीं थी। बात बातमे ही मेरे मुंह से निकलगया था कि बड़े कष्टों से मैंने तेरे पति का पालन पोषण किया है इस उपकार का कुछ खयाल रखना।

गुरुदेव– ओह! बात तो जरा सी है पर है बड़ी गलत।

दमयन्ती– पर उसके जबाब मे बहू ने भी ऐसा ठुसा मारा जो जन्मभर याद रहेगा।

गुरुदेव– क्या कहा?

दमययंती– बोली— जिन मां बाप ने सोलाह वर्ष तक मेरे पालन पोषण की कठोर तपस्या की, उनके उपकारों को ही जब मैं भुला चुकी हूं तब जितने सिफ चाकरी कराने के लिये मुझे गुलाम बनाया है उनके उपकार क्या याद रक्खूंगी?

गुरुदेव– कमाल है! तुम्हारी बहू है तो तेज, पर है बुद्धिमती। अगर तुम भी उसके अनुरूप बुद्धिमती साबित न हुई तो तुम्हारा घर नरक बनजायगा। और अगर तुमने चतुरता और उदारता से काम लिया तो ऐसी तेजस्विनी और बुद्धिमती बहू महान् शक्ति के रूप मे घर के लिये आशीर्वाद बनजायगी।

दमयन्ती– मेरी तो अक्ल कुछ काम नहीं करती, अब आप ही कुछ रास्ता बताइये! जैसा आप हुक्म देंगे वैसा ही करूंगी।

गुरुदेव– हुक्म जमाने से ही काम न चलेगा मशीन की तरह काम कर देने का कोई अर्थ नहीं। जो तुम्हें करना है पहिले उसकी सचाई समझना चाहिये।

दमयन्ती– अभी तो मेरी समझ में कुछ नहीं आरहा है।

आप बताइये—क्या समझूँ ? कैसे समझूँ ?

गुरुदेव- तुम अगर लड़की की मां होती और उसकी शादी के बाद ससुराल में तुम्हारी लड़की से कोई कहता कि तुमने जो बड़े कष्ट से लड़की का पालन पोषण किया है उस उपकार की अपेक्षा तुम्हारी लड़की पर उस सासू का उपकार ज्यादा है जिसने उसके पति का पालन पोषण किया है, तो तुम्हें कैसा मालूम होता ? और तुम्हारी समझ से तुम्हारी लड़की को कैसा मालूम होना चाहिये था ?

दमयन्ती क्षणभर चुप रही, उसके चेहरेपर वेदना की छाया आगई। फिर बोली-समझगई गुरुदेव, मै अपनी भूल समझगई। मै अभी जाती हूं और हाथ जोडकर बहू से माफी मांग लेती हूं।

गुरुदेव- नहीं दमयन्ती, इस तरह माफी मांगने से काम न चलेगा। इससे द्वेष और गहरा तथा स्थायी होजायगा। गुरुजन जब इस तरह माफी मांगते है तब यह माफी मागना नहीं कहलाता किन्तु चिढ़ाना या रोष प्रगट करना कहलाता है। छोटों के लिये बड़ों से माफी मांगने का जो तरीका है वह बड़ों के लिये छोटों से माफी मांगने का नही है।

दमयन्ती— तो शब्दों से माफी न मांगू ? व्यवहार में ही नम्रता और प्रेम का परिचय दूं ?

गुरुदेव- हां ? यह तरीका उससे कुछ अच्छा है। पर यहां कुछ अच्छा का अर्थ यही है कि कुछ कम खराब है। इसमें भी नुकसान है ही। क्योंकि बहू को यह भ्रम होजायगा कि उसने जो ठुस्से का जबाब दिया उससे सासू जी सीधी होगई। इस प्रकार तुम्हे वह हैवान समझने लगेगी और अपनी कठोरता या उद्दंडता को अर्थात् शैतानियत को गुण समझने लगेगी। इसप्रकार यह एक विषबीज बोजायगा।

दमयन्ती—तब क्या करूं गुरुदेव। ?

गुरुदेव— इसकेलिये बहुत सोचविचार नहीं करना है

किन्तु यहां आकर जो मेरी तुम्हारी बातचीत हुई उसकी रिपोर्ट ही सुना देना है। सुनाते समय बहू के साथ बेटी सरीखा प्रेमल व्यवहार होना चाहिये और चेहरे पर गम्भीरता बिलकुल न आना चाहिये किन्तु हँसी खेलती दिखाई देना चाहिये। पर इसमें सफलता तभी मिलेगी जब यह कार्य नाटकीय ढंग से नहीं, किन्तु मन से होगा।

दमयन्ती— समझगई गुरुदेव ! मेरे मन का भाव बिलकुल बदलगया है, इसलिये मुझे आशा है कि आपकी इच्छा के अनुरूप ही इसका सुफल होगा। मेरे ऊपर आपकी कृपा अनन्त है। मुझ अन्धी को रास्ता बताने वाले और नरक से निकालकर स्वर्ग में पहुंचाने वाले आप ही हैं।

यह कहकर और गुरुदेव को प्रणामकर दमयन्ती चलीगई।

घर आकर उसने बहू से प्रेमल स्वर में कहा— बेटी, मैं अभी अभी गुरुदेव के यहा से आरही हूं। मुझे खेद है कि मैं तुझे भी साथ क्यों न लेगई। मैंने वहां तेरी नालिश कर दी थी। पर तू बड़ी भाग्यवान है। तेरी वहां जीत ही हुई।

यह कहकर दमयन्ती हँसने लगी।

बहू ने मुसकराते हुए कहा— आपकी यह पहेली मेरी समझ में नहीं आई मां !

दमयन्ती— इसमें पहेली क्या है बेटी ? मैंने जो अपने उपकार के खयाल रखने की बात कही थी और तूने जो उसका कुछ कठोरसा उत्तर दिया था उसी की नालिश गुरुदेव के यहां कर दी थी। पर उनने फैसला तेरे पक्ष में दिया। बोले—लड़की के ऊपर मां बाप का ही महान उपकार है, सास ससुर पति तो सहयोगी हैं। इसमें उपकार की क्या बात हुई ? इसप्रकार उनने मेरी भूल बतादी।

बहू— नहीं मां ! भूल मेरी हुई थी। मैं तभी से पछतारही हूं कि ऐसी कठोर बात मेरे मुँह से क्यों निकलगई ? अब मुझे माफ कर दो मां !

दमयन्ती- जब तेरा कुछ कुसूर ही नहीं है तब माफ क्या करदूं ? अगर कुछ कुसूर होता भी तो बच्चे इस तरह माफी नहीं मागा करते। वे तो कुसूर करके भी मा से रूठते हैं और मनवाते हैं।

बहू— यह तो दुध मुँहे बच्चों की बात हुई मा ! पर मैं तो दुधमुँही नही हूँ।

दमयन्ती— मैने तुझे दुध नही पिलाया तो क्या हुआ, मेरे सामने तू जिन्दगीभर दुधमुँही रहेगी।

यह कहकर दमयन्ती ने बहू को छाती से लगालिया और प्रेम से उसके सिरपर हाथ फेरने लगी। पर बहू का सिर धीरे धीरे दमयन्ती के पैरोंपर आगया। दोनों की आंखे प्रेमासुओ से भरगईं।

१२ दुमी १९५५८ सत्यभक्त
उदयरात्रि २॥ बजे सत्याश्रम वर्धा

३- मेहमान बेटी

पद्मा ने आकर गुरुदेव को नमस्कार किया। गुरुदेवने कहा— बहुत दिनसे आई बेटी ! क्या ससुराल जाने की तैयारी है ?

पद्मा- हां ! गुरुदेव, सत्रह दिन होगये हैं। वहां से लेने के लिये आगये हैं।

गुरुदेव- बहुत जल्दी आगये है। शादी के बाद पहिली बार ही तो तू पीहर लौटी है। कम से कम एक दो माह तो रहना था।

पद्मा- पर अब तो मै सत्रह दिन मे ही भारी होगई गुरुदेव।

गुरुदेव- किसकेलिये भारी होगई ? मा बाप के लिये !

पद्मा- सभी के लिये ?

गुरुदेव- मां बाप ने तेरा पालन पोपण सत्रह वर्ष तक किया तब तो भारी नहीं हुई पर अब सत्रह दिन मे भारी कैसे होगई ?

पद्मा- अब मुझसे कुछ काम नहीं होता, मेरे साथ एक नौकरानी आई है तो उसका भी बोझ है, फिर मै एक श्रीमन्त घर

की बहू बनजाने से मेरा वैभव भी कुछ खटकता सा मालूम होता है।

गुरुदेव– इसमें खटकने की क्या बात है बेटी, तू श्रीमन्त घर की बहू बनजाय इसीके लिये तो तेरे मातापिता ने और भाई ने काफी मेहनत की और शक्ति से बाहर हजारों रुपयों का खर्च किया। उनकी इतनी कोशिश और इतना त्याग जब सफल हुआ है तब उन्हें वह खटकेगा क्यों ?

पद्मा– क्या बताऊं गुरुदेव !

गुरुदेव– नहीं बेटी, यहां तुमसे कुछ बड़ीसी भूल होरही है। मां बाप ने सत्रह वर्ष तक तेरा पालन पोषण किया, पढ़ाया लिखाया, तुझे जीवनभर सुखी और सम्पन्न बनाने के लिये हजारों रुपये खर्च किये, उनके इन असीम उपकारों के लिये तेरे मन में कृतज्ञता की कुछ कमी मालूम होती है। अगर उनने लड़के के लिये इतना खर्च किया होता तो आज उन्हें वह कमाई तो खिलाता ही, साथ ही तन से भी वह पूरी सेवा करता। पर तेरे लिये तो त्याग ही त्याग उनके पल्ले पड़ा है, और बदले में सेवा का एक छोटा सा अंश भी उन्हें नहीं मिलरहा है।

पद्मा– पर इसमें मेरा क्या कुसूर है गुरुदेव !

गुरुदेव– जहां तक सामाजिक विधान का सम्बन्ध है वहां तक तेरा कोई कुसूर नहीं। पर लड़की के लिये मां बाप को कितना त्याग करना पड़ता है इस बात को लड़की भूल जाय, और मां बाप के बलिदान के दम पर जो कुछ लड़की को मिला उसका अभिमान उसमें आजाय, और वह अभिमान मां बाप के सामने भी प्रगट होने लगे, इसकी जिम्मेदारी तो सामाजिक विधान पर नहीं डाली जासकती। मां बाप के प्रति कृतघ्न अविनीत या अहंकारी बनने का तो सामाजिक विधान नहीं है।

पद्मा– पर ऐसा तो मैने कुछ नहीं किया गुरुदेव,

गुरुदेव– घर में रोटी कौन बनाता है ?

पद्मा– मां और भाभी !

गुरुदेव- तू और तेरी नौकरानी क्या करती है ?

पद्मा- मैं तो चार दिन मेहमान हूं, सो क्या करूं ? और नौकरानी भी मेहमान ही है, वह भी क्या करे ? वह सिर्फ मेरी साड़ी धोदेती है और बिस्तर बिछा देती है ?

गुरुदेव- और इस बात के लिये मन ही मन बड़बड़ाती भी होगी कि तेरे मां बाप कैसे कंगाल है कि उनके घर में तेरी साड़ी धोने के लिये कोई नौकरानी भी नहीं है।

पद्मा- कहती तो नहीं फिरती है, पर उसके मन में यह भाव आता है जरूर, जो चेष्टाओं से प्रगट होता है।

गुरुदेव- तेरे मां बाप तुझे यदि किसी गरीब के घर ब्याह देते तो उनका खर्च भी बहुत बचता, और तेरे साथ नौकरानी भी न आती जो उन्हें कंगाल समझने की गुस्ताखी करती, और तू भी घर गृहस्थी के काम में उनको कुछ मदद करती। पर उनने तुझे सुखी सम्पन्न बनाने के लिये, जो त्याग किया, जो पुण्य किया, उसका फल यह है कि आज उनके घर में उनकी सन्तान नहीं आई है जो कुछ सेवा करेगी किन्तु एक रानी आई है जिसका ठाठ बरदाश्त करना उनकी ताकत के बाहर होरहा है।

पद्मा— नीची नजर किये हुए चुप रही।

गुरुदेव— ने थोड़ी देर चुप रहकर कहा — तू ने मां बाप से ससुराल का वर्णन किया ही होगा कि तेरी ससुराल में कितने नौकर हैं और वैभव चारों तरफ किस तरह उछलता दिखाई देता है ?

पद्मा— यह सब बताया है गुरुदेव !

गुरुदेव— पर क्या साथ में मां से यह भी कहा है ? कि "यह सब वैभव तुम्हारे चरणों की कृपा से, तुम्हारे त्याग और बलिदान से मैंने पाया है। लड़का तो थोड़ा बहुत मात्रा में मां बाप का ऋण चुकाता भी है पर लड़की को तो मां बाप के उपकारों का अनन्त बोझ लिये लियेही मरनापड़ता है। मै जिन्दगी भर

तुम्हारे ऋण से उऋण नहीं होसकती मां । ”

पद्मा— (कुछ रुंधे गले से) ऐसा तो कुछ नहीं कह सकी गुरुदेव !

गुरुदेव— क्यों नहीं कह सकी बेटी ? माना कि छोटे बच्चे इसप्रकार कृतज्ञता प्रगट करना नहीं जानते, पर तू अब छोटी बच्ची नहीं है, तू तो उस वयस्कता में पहुंच चुकी है कि मां बाप के यहां भी अपने को मेहमान मान सके । तब कम से कम मेहमान के समान शाब्दिक शिष्टाचार ही निभाती ।

पद्मा चुपरही । गुरुदेव ने कुछ रुककर कहा— मानले कि तू आज सरीखी वैभवशालीनी न होती, और लक्ष्मी का क्या ठिकाना आज है कल नहीं है, तेरी परिस्थिति बदलजाय, फिर भी तू किसी लड़की की मां बनकर अपने से अधिक सम्पन्न व्यक्ति के यहां लड़की व्याह दे और तब तेरी लड़की तेरे यहां इसीप्रकार मेहमान बनकर आये, और वह और उसकी नौकरानी तेरी गरीबी पर नाक सिकोड़ कर अपनी वैभवशालिता के गीत सुनने लगे, तब तुझे और तेरे पुत्रों और पुत्रवधुओं को कैसा मालूम होगा ?

पद्मा की आंखों से आंसू बहने लगे । गुरुदेव ने कहा— बेटी; मनुष्य से भूल हो ही जाया करती है । फिर तू तो अभी बच्ची है । भूल होजाना स्वाभाविक है ।

महत्ता तो बड़ों बड़ों को नहीं पचती है, फिर अभी तो तेरी उम्र ही क्या है ? मां बाप के उपकार का बोझ तो कोन उतार सकता है, फिर लड़की को तो वह अवसर और परिस्थिति ही नहीं मिलती कि उनके उपकार का शतांश भी बदला देसके । पर विनय और कृतज्ञता तथा सेवावृत्ति की उमंग बताकर मां बाप के मन को सन्तुष्ट रक्खा जाय तो लड़की की परिस्थिति का विचार करके यही काफी प्रत्युपकार समझा जासकता है ।

पद्मा— गुरुदेव के चरणों पर सिर रखकर आंसू बहाने

लगी। फिर बोली—आपने मेरी आंखें खोल दीं गुरुदेव, अब मैं ठीक राह पर चलूंगी। मेरी कृतघ्नता का पार नहीं रहा था। इस पाप के कारण कदाचित् इसी जन्म में, और पर लोक में तो निश्चित ही, मेरी दुर्गति का पार न रहता। मै पशु बनती जाती थी गुरुदेव, आपने मुझे फिर आदमियत की ओर लौटा लिया।

इतने मे आई पद्मा की मां। पद्मा को देखकर बोली—पद्मादेवी ने तो आज गुरुदेव से न जाने कितना पाठ पढ़ लिया। बहुत दिनो का पाठ एक ही दिन में पढ़ लिया? पर उधर रसोई ठंडी होरही है।

पद्मा मां के चरणो से लिपट गई और रोते रोते बोली—मुझे माफ कर दो मा! पद्मा देवी कहकर मुझे आदर के बोझ से न दबा डालो। मुझे प्यार से पद्मी ही कहो। मुझसे बहुत भूल हुई मां, तुम्हारे अनन्त उपकारो को मै जानवर की तरह भुला चुकी थी मां! पर अब मेरी आखें खुलगई है।

मां ने पद्मा को उठाकर उसके सिरपर हाथ फेरा, आंचल से आंसू पोंछे। फिर गुरुदेव से कहा— मेरी तो कुछ समझमे नही आया गुरुदेव, क्या बात है?

गुरुदेव— कुछ खास बात नहीं है। इसके साथ चर्चा करने से मालूम हुआ कि ससूराल से आनेपर यह घर मे बेटी की तरह नहीं, किन्तु श्रीमन्त मेहमान की तरह रहती है। उसको यह गलती मैंने बताई। और आखिर तो यह सयानी बेटी है, इसलिये जल्दी समझ भी गई।

पद्मा— हां! समझगई मां, तुम्हारे चरणों की कृपा से और तुम्हारे बलिदान से जो वैभव मुझे मिला उसी के घमड का नशा मुझे इतना चढ़ा कि तुम्हो को घमड दिखाने लगी। मै भस्मासुर बनगई मां, पर गुरुदेव ने वह नशा उतार दिया।

मां हर्ष के मारे भरे हुए आंसू और रुंधते हुए गले से बोली— आपकी अनन्त कृपा है गुरुदेव, मेरी गुमीहुई बेटी

आपकी कृपा से मिलगई। और समय पर मिलगई। आज इसकी विदाई का दिन है।

पद्मा- नहीं मां. मैं आज नहीं जाऊंगी। मैं पद्मादेवी को मारकर और पद्मी को जिलाकर जाऊंगी। चार दिन में ही तुम देख लेना कि मेहमान पद्मादेवी मरचुकी है और तुम्हारी पद्मी बिटिया जी उठी है। अब चार दिन मै तुम्हें कोई काम न करने दूँगी। रोटी बनाना बर्तन मलना कपड़े धोना सब मैं करूंगी।

मां- तुझे यह सब नहीं करना है बेटी। जन्म से तुझे पालते पालते जब मेरे हाथ नहीं घिसे तब चार दिन मे क्या घिस जायगे ?

पद्मा- तुम्हारे हाथ घिसनेकी बात नहीं है मां, पर सत्रह दिन में मेरे जीवनपर जो सत्रह मन मैल चढ चुका है उसे घिसकर निकालने का सवाल है मां ! उसीके लिये मै चार दिन और रहूंगी।

मां जितने चाहे दिन रह बेटी; मेरी गुमी हुई पद्मी मिलगई, अब मैं भी उसे जल्दी न जाने दूँगी। यह सब गुरुदेव की कृपा है।

(दोनों गुरुदेव को नमस्कार करके विदा हो जाती हैं)

२४ जिन्नी ११·५९ इ. सं. सत्यभक्त
२१-३-५९ सत्याश्रम वर्धा

४- अनुशासित सन्तान

त्रिवेणीदास ने गुरुदेव से कहा— गुरुदेव, लोग सन्तान को तरसते है, मैं भी किसीदिन सन्तान के लिये तरसता था पर अब तो सन्तान के मारे नाक में दम है। सब दिनरात छीनाझपटी करते रहते है, गाली मारपीट करते रहते है, किसी का कहना नहीं मानते, पडौस के लोग भी उनसे घृणा करते हैं। क्या करूं कुछ समझ मे नहीं आता।

गुरुदेव- बच्चों में कुछ चंचलता तो होती ही है पर तुमने

सन्तान को कुछ बिगाड़ दिया है ।

त्रिवेणी- मैंने क्या किया गुरुदेव ! मैंने उनसे कब कहा कि बिगड़ जाओ ?

गुरुदेव- बिगड जाओ कहने से बच्चे बिगडते नहीं हैं और बनजाओ कहने से बनते नहीं हैं। जन्म से न बच्चे बिगड़े हुए आते हैं न बने हुए आते हैं । प्राणी की सहज स्वार्थ वृत्ति और अदूरदर्शिता से जो प्रवृत्तियाँ होती है, उनपर ठीक ढंग से रोक न लगाने से बच्चे बिगड़ जाते है। इससे आगे चलकर वे हमे भी परेशान करते है और अपना जीवन भी बरबाद करते है ।

त्रिवेणी- पर रोक तो हम दिनरात लगाते रहते है ।

गुरुदेव- पर रोक लगानेपर भी जब नही लगती तब क्या करते हो ?

त्रिवेणी- यही तो समझ में नहीं आता कि क्या करे ? कभी कभी गुस्सा आजाता है तब दोचार तमाचे लगादेते है पर पीछे हमें खुद रंज होजाता है ।

गुरुदेव- तब ऐसा काम क्यों करते हो जिससे रंज करना पड़े ?

त्रिवेणी- क्या करें ? जब बार बार चिल्लाने पर भी बच्चे नहीं मानते तब क्रोध आ ही जाता है ।

गुरुदेव— यदि क्रोध उचित है तब रंज क्यों करते हो ? यदि अनुचित है तो अनुचित क्रोध का किसीपर अच्छा असर कैसे पड़ेगा ?

त्रिवेणी— तब क्या करें गुरुदेव ! न वे क्रोध करने से मानते है न बिना क्रोध किये मानते है। आखिर उन्हें समझाया कैसे जाय ? बच्चे तो बन्दर की जात होते हैं, वे एक जगह बैठ ही नहीं सकते ।

गुरुदेव- उन्हें एक जगह कैद करने की जरूरत नहीं है ।

उन्हें बाल्यावस्था में ही बूढ़ा नहीं बना देना है। इससे तो उनका शारीरिक और मानसिक विकास ही रुकजायगा। उन्हें बालोचित क्रीड़ाएँ करने दो। सिर्फ उनको ऐसी मर्यादाएँ बांधदो कि उनका उल्लघन कर वे कुसंस्कारी न बन जाय। जैसे चोरी करने की आदत गाली देने की आदत, दूसरे की चीज नुकसान करने की आदत, मातापिता के सिवाय अन्य लोगों से मांगने की आदत, सिनेमा आदि के गन्दे गीत गाने की आदत न पड़ने दो।

त्रिवणी- इन्हीं सब बातों के लिये ही तो हम उन्हें दिनरात रोका करते हैं?

गुरुदेव- पर केवल शब्दों से रोकने से काम नहीं चलता। रोक क्रियात्मक होना चाहिये। साथ ही अनुशासन में उग्रता की अपेक्षा दृढ़ता अधिक होना चाहिये और साथ में समझावट भी।

त्रिवेणी- दृढ़ता से क्या मतलब?

गुरुदेव— मतलब यह कि जिस बातपर तुम रोक लगाना चाहते हो उसपर दृढ़ता से रोक लगाओ! अगर रोक न माने तो उपेक्षा न करो, हँसी में न टालदो, उचित दंड दो। साथ ही बुरे काम की बुराई भी समझाओ। यह मत समझो कि बच्चे क्या समझेंगे? वे काफी समझते हैं।

त्रिवेणी- समझाने को तो हम दिनभर समझाते हैं. दिनभर रोक लगाते हैं डाटते फटकारते भी है, दंड भी देते है पर वे अपनी चाल नहीं छोड़ते।

गुरुदेव- विना समझे जरा जरा सी बातपर डाटते फटकारते रहनेसे उसका मूल्य समाप्त हो जाता है। दिन दो दिनमें कदाचित् सप्ताहमें एकाध बार से अधिक डाट फटकार का मौका न लाना चाहिये। इससे डाट फटकार की विशेषता बनी रहती है। और छोटी छोटी बातोंपर डाट फटकार भी न बताना चाहिये। इससे वे छोटी छोटी बातों के समान ही बड़े बड़े अपराधों को मानने लगते हैं। और जिसप्रकार छोटी छोटी बातों की पर्वाह नहीं करते उसी प्रकार बड़ी बड़ी बातों की भी पर्वाह नहीं करते हैं।

त्रिवेणी — हां ! यह भूल तो होती है।

गुरुदेव— छोटी छोटी भूले ही बच्चों को बिगाड़ देती हैं। उनको सुधारने के लिये जरूरी है कि उन्हें १- कम से कम डांट फटकार बताई जाय २- जब बताई जाय तब दृढता से बताई जाय और उसका पालन जरूर कराया जाय। ३-तुम्हें हुक्म देने का अधिकार है इसलिये मनचाहे हुक्म देने की वृत्ति तुम्हारे भीतर न आना चाहिये, किन्तु जो हुक्म तुम देरहे हो उसकी उपयोगिता उन्हें डांट फटकार के साथ नहीं किन्तु प्रेम से गम्भीरता के साथ समझाना चाहिये। ४-अवस्था के अनुरूप उनमें गौरव की भावना भी जगाना चाहिये जिससे वे अनुभव कर सकें कि वे भले हैं इसलिये यह बुराई उन्हें शोभा नहीं देती। ५- इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि इन सब अंकुशा के कारण उनका हृदय दब न जाय, उनकी खिलाड़ू वृत्ति प्यासी न रहजाय। अन्यथा या तो वे बिलकुल दब्बू निर्जीव हो जायगे, या तुम्हारे अंकुशों को तोड़कर बिलकुल उद्दड होजायगे।

त्रिवेणी— बच्चों को पालना बहुत कठिन है गुरुदेव !

गुरुदेव— बहुत कठिन तो नहीं है पर महत्वका जरूर है। कठिन तो इसलिये बनजाता है कि हमे खुद अपनेपर अंकुश नहीं है। बच्चों के सामने हम गाली बकें पर बच्चों को रोकें तो उसका क्या अर्थ होगा ? हमें अपना जीवन अच्छा बनाना चाहिये तब बच्चों पर उसका अच्छा प्रभाव पड़ेगा। बच्चों से सदा प्रेम करो, सदा प्रेम से बोलो, पर मोहांध न बनो, सदा विवेक से काम लेते रहो।

त्रिवेणी- पर जो लोग कभी गाली नहीं देते उनके बच्चे भी गाली देना सीख जाते हैं। जो कभी चोरी नहीं करते उनके बच्चे चोरी करना सीख जाते हैं। यह सब कहां से सीख जाते हैं ?

गुरुदेव- पड़ौसियो से सीख जाते हैं, साथी बच्चों से सीख

जाते हैं। स्कूल में तो भेजना ही पड़ता है और वहां एक से एक बढ़कर खराब बच्चों की संगति मिलती है इसलिये वहां से सीख-जाते हैं। हमारे शिक्षक बच्चों के चरित्र की कोई जिम्मेदारी नहीं उठाते उन्हें तो किसी तरह किताब पूरी करा देने से मतलब।

त्रिवेणी- जब हम दो बच्चों को नहीं सुधार पाते तब शिक्षक ४०-५० बच्चों को कैसे सुधार पायगा ?

गुरुदेव— सुधार पायगा। मातापिता की अपेक्षा बच्चों-पर शिक्षक का प्रभाव ज्यादा पड़ता है। वह कभी कभी सदाचार का पीरियड लेलिया करे और बच्चों में सदाचार की प्रतिस्पर्द्धा का भाव पैदा करे तो बच्चे सुधर सकते हैं। सदाचार को उत्तेजन दिया जाय, उसकी प्रशंसा की जाय, दुराचार की बुराई गम्भीरता से बताई जाय, घटनाओं का विश्लेषण करके उन्हें समझाया जाय, सदाचार से प्रसन्नता दुराचार से अप्रसन्नता का सम्बन्ध रक्खा जाय तो लड़के जरूर सदाचारी बनसकते हैं। इन सब बातों पर उपेक्षा और लापर्वाही से ही बच्चे बिगड़ते हैं।

त्रिवेणी- पर जब शिक्षक यह जिम्मेदारी नहीं उठाते तब हम क्या करें ?

गुरुदेव- हम खुद उनपर ध्यान दें। उन्हें काफी खेलने कूदने दें, शक्ति के अनुसार उनकी फर्माइशें भी पूरी करें, उनके आनन्द में आनन्द व्यक्त करें, पर कोई उनमें ऐसी बुराई देखें जिससे उनका बचाना जरूरी है तब उनकी बुराई बताकर उनके साथ गम्भीरता से व्यवहार करें। उनकी फर्माइशें पूरी न करें, आनन्द व्यक्त न करें। ऐसा परिवर्तित व्यवहार तब तक करें जब तक वे वह बुराई छोड़ न दें। जब वे बुराई छोडदें, या कोई अच्छा काम करें तब उन्हें शाबासी दें, उनकी प्रशंसा करें। इस तरह बच्चों में गुणदोष के फलाफल का विवेक पैदा होजायगा। सदा लापर्वाही रखना, कभी जरा जरासी बातपर पीटने लगना, कभी बड़ी से बड़ी बातोंपर उपेक्षा कर जाना, न्याय के अनुसार नहीं,

अपने मन की तरंग के अनुसार व्यवहार करना, इन सब बातों से बच्चे अंकुश से बाहर होकर कुमार्ग में चले जाते है।

त्रिवेणी– आप ठीक कहते है गुरुदेव ! देश के सामने यह भी महत्वपूण समस्या है। इसके लिये एक पंचवर्षीय योजना बनाने की जरूरत है। जिससे सारे देश के लोग निश्चित नीति के अनुसार बच्चों का पालन कर आगामी पीढ़ी का सुधार करें।

गुरुदेव– खैर ! सरकार इस विषयमे पचवर्षीय योजना बनाये चाहे न बनाये पर तुम तो अपनी पंचवर्षीय योजना बना ही सकते हो। योजना के सूत्र तुम्हें ध्यान मे रखना चाहिये और पालना चाहिये।

त्रिवेणी— योजना के सत्रों में ही भूल होजाती है गुरुदेव, आप सब रूप बतादें तो मै उनका ध्यान रक्खूं।

गुरुदेव– दृष्टि प्राप्त होजाने पर सूत्र अपने आप सूझ जाते हैं। फिर भी स्पष्टता के लिये सिलसिलेवार सूत्र बता देता हूं।

१— बच्चो से खूब प्यार करो ! उनके आनन्द में आनन्द का अनुभव करो।

२— बच्चों की आवश्यकताएँ अपनी शक्ति के अनुसार पूरी करना चाहिये। जिसे पूरा नहीं किया जासकता उसका कारण उन्हें समझा देना चाहिये कि वह क्यो पूरी नही की जासकती।

३– जो बुराई तुम बच्चो मे नही लाना चाहते वह बुराई तुम्हारे जीवन में न होना चाहिये। कदाचित कोई बुराई अपरिहार्य हो बैठी हो तो उसकी बुराई का पश्चात्ताप बच्चो के सामने प्रगट करना चाहिये। उन्हें यह समझना चाहिये कि हम अमुक बुराई के शिकार होकर कैसा कष्ट उठा रहे है। अब तुम्हें उससे बचना चाहिये जिससे हम सरीखे कष्ट तुम्हें न झेलना पड़े।

४— समय समय पर बुराई की निन्दा और भलाई की प्रशंसा करते रहो।

५— बालकों में जब कोई बुराई देखो तब उनकी जिसप्रकार निन्दा करते हो, उसी प्रकार भलाई से उनकी प्रशंसा भी करो, उन्हें शाबासी भी दो।

६– यथाशक्य उन्हें दुःसंगति से बचाये रक्खो।

७– कोई रोक लगाना हो तो गम्भीरता से लगाओ ! न लगने पर उपेक्षा न करो उसका जबाब तलब करो।

८— सदा डाटते डपटते और मारते पीटते न रहो। इससे बच्चे निर्लज्ज, लापर्वाह और धृष्ट होजाते है इसलिये ऐसे प्रसंग कम से कम आने दो।

९— उनको योग्यता के अनुसार उनपर जिम्मेदारी डालो !

१०— बालकोचित चपलताओ को, उनकी खिलाड़ू वृत्ति को दबाने की कोशिश न करो ! सिर्फ इतना पथ प्रदर्शन करते रहो जिससे इस वृत्ति का दुरुपयोग न होसके।

ये दस सूत्र काफी हैं।

त्रिवेणी– परिपूर्ण हैं गुरुदेव ! मुझे पूरा विश्वास है कि इनके पालन से हमारी भी परेशानी बचेगी और बच्चों का भी कल्याण होगा।

२३ अका ।१९५९ इ. सं — सत्यभक्त

रामनवमी ता. १७-४-५९ — सत्याश्रम वर्धा

५– प्यार की उम्र

उसदिन रजनी ने गुरुदेव से एक विचित्र ही प्रश्न पूछा। बोली–प्यार की उम्र कितनी है गुरुदेव !

प्रश्न से चौंकते हुए भी गुरुदेव ने सरलता से ही कहा– प्यार तो एक तरह से अमर है बेटी ! आदमी की उम्र से उसकी उम्र ज्यादा है वह मरने के बाद भी रहता है।

रजनी कुछ देर चुप रहकर गहरी सांस लेकर बोली–लेकिन

मेरे घर में तो प्यार की उम्र एक वर्ष को भी न निकली गुरुदेव !

गुरुदेव- आदमी को जिसप्रकार मरने के पहिले नाना तरह की बीमारियाँ होती है उसी प्रकार प्यार भी बीमार होता है। अन्तर इतना ही है कि बीमार आदमी को लोग अन्त तक बचाने की कोशिश करते है पर बीमार प्यार को तुरन्त ही मुर्दा समझ लेते हैं। एकदम निराश होजाते है।

गुरुदेव की बात सुनकर रजनी कुछ देर विचार में पड़ी रही, फिर बोली—प्यार ऐसा बीमार क्यो होता होगा गुरुदेव कि उसके मरनेका भ्रम होने लगे।

गुरुदेव- अनुचित आशाएं करने से, साथी की रुचि सुविधा आदि का ख्याल न करने से, जिम्मेदारी का भान भूलजाने से, आवेगो को वश मे न रख पाने से प्यार बीमार होजाता है, प्यार की बीमारी को न सम्हाला जाय तो प्यार मरजाता है या मरे हुए के समान होजाता है।

रजनी- गुरुदेव, मेरी तो समझमें ही नहीं आता कि किस कारण से हमारा प्यार मर गया या बीमार होगया। मैंने कोई बड़ी आशा तो नहीं की थी। गुरुदेव ! मैने तो सिर्फ यही चाहा था कि विवाह के पहिले जसे हम एक दूसरे को चाहते थे, आदर करते थे ध्यान रखते थे। वैसा बाद मे भी रखते लेकिन मेरे साथ विश्वासघात किया गया। विवाह केबाद मुझपर उपेक्षा होने लगी। अपने काम से काम, मेरी किसी को पर्वाह नहीं। यदि ऐसा ही व्यवहार रखना था तो विवाह के पहिले ही साफ कह देना चाहिये था, या ऐसा ही व्यवहार तब भी करना चाहिये था जिससे मै धोखा न खाती। पर मैं तो विश्वासघात का शिकार होगई।

गुरुदेव- तेरे इस दुःखी जीवन से मुझे भी काफी दुख हुआ है रजनी फिर भी इसका ठीक इलाज तभी होसकता है जब मैं चन्द्रप्रकाश की बात भी सुनलूं। इकतरफी बात से न्याय नहीं होता। और न्याय विना समस्या सुलझ नहीं सकती। हां ! मै यह

मानता हूं कि तूने जो कुछ कहा है वह सब सत्य है। पर सत्य तो आपेक्षिक है। होसकता है मैं अपनी अपेक्षा से एक बात बिलकुल सत्य कहूं और दूसरा अपनी अपेक्षा से उससे उल्टी बात को सत्य कहे। इसप्रकार सत्य के दो पहलुओंके विरोधसे संघर्ष छिड़ जाय, प्रेम नष्ट होजाय। समन्वयहीन आंशिक सत्य असत्य के समान ही होता है बेटी !

रजनी- तो आप उनसे भी पूछ लीजिये गुरुदेव !

उनसे भी पूंछ लूंगा फिर भी तू अपने पक्षका आंशिक सत्य तो सुना ही दे। जिससे चन्द्रप्रकाश से चर्चा करते समय सुभीता हो।

रजनी- मेरी कोई बड़ी शिकायत नहीं है गुरुदेव ! मैं उपेक्षिता हूं। विवाह के पहिले घंटो बातें करते रहते थे फिर भी न अघाते थे। मेरी जरा सी भी जरूरत होती तो उसे पूर्ण करने में तत्परता दिखाते। पूरी कर देने पर भी और किसी जरूरत के लिये बार बार पूछते। मैं कोई चीज परोसती तो उसे बड़े स्वाद से खाते और बार बार तारीफ करते। कभी कुछ ज्यादा परोसदूं तो भी मेरा आग्रह न टालते। पर अब बात करने को फुरसत नहीं। कोई जरूरत बताऊं तो उसे पूरी करने में उत्साह नहीं। मेरी बनाई चीजों की प्रशंसा नहीं। कभी प्रेम से ज्यादा परोसदूं तो प्रसन्नता के बदले झुंझलाहट। ये सब प्यार के मरने को ही निशानियाँ तो हैं गुरुदेव !

गुरुदेव मन ही मन हँसे। पर रजनी का रुँधे गले का स्वर और आखों में आंसू देखकर उनने हँसने की अपेक्षा सहानुभूति के स्वर में कहा—तेरी वेदना स्वाभाविक है रजनी ! पर इसका कारण प्यार की मौत नहीं, तेरी कुछ नासमझी है।

रजनी- नहीं गुरुदेव ! दोनों अवस्थाओं का अन्तर इतना सूक्ष्म नहीं है कि उसे मैं समझ न सकूं।

गुरुदेव— बालक जब जवान होजाता है तो बाल्यावस्था

की बहुतसी बातें नष्ट होजाती हैं। उछलना कूदना, बात बात में रोना हँसना आदि जवानी मे नहीं रहता। दोनों अवस्थाओं का अन्तर इतना साफ रहता है कि उसे समझने में दिक्कत नहीं होती। पर यह अन्तर पड़जाने का अर्थ यह नहीं है कि बालक मर गया है।

गुरुदेव की यह अद्भुत बात सुनकर रजनी को कुछ हँसीसी आगई। उसने आश्चर्य से कुछ मुसकराते हुए पूछा— तो क्या हमारा प्यार बालक से जवान होगया है गुरुदेव ?

गुरुदेव ने कुछ गम्भीरता से कहा— हां ! ऐसा ही कुछ समझ बेटी ! विवाह के पहिले और कुछ समय बाद भी तुम एक दूसरे के लिये मेहमान थे। मेहमान से किसी प्रकार की सेवा लेने की आशा नहीं की जाती, अधिक से अधिक सेवा देने की ही कोशिश की जाती है। उसकी त्रुटियों को नहीं देखा जाता। यही शिष्टाचार है। पर विवाह के काफी समय बाद दम्पति आपस में मेहमान नहीं रहते। किन्तु काम के साथ धर्म और की भी जिम्मेदारी उठानेवाले सहयोगी बनजाते हैं। उस समय प्यार बरसाती नाले की तरह उछलता नहीं है किन्तु गंगा की तरह गम्भीर होजाता है।

रजनी— पर क्या गम्भीर का अर्थ गुंगा होता है गुरुदेव !

गुरुदेव— होता है, पर गूंगा कहा नहीं जाता। आदमी जब जिम्मेदारी उठाने के काम मे लगजाता है तब बोलना कम होजाता है। उस समय शब्द भाषा के स्थान में कार्यभाषा का प्रयोग होने लगता है। यों तुझ सरीखी बच्ची कह ही सकती है कि बरसाती नाला मुखर है और गंगा गूंगी है। पर इससे न गंगा की इज्जत घट सकती है न उपयोगिता।

रजनी कुछ क्षण सोचती रही फिर बोली— क्या मेरी उपेक्षा जिम्मेदारी के बोझ के कारण है ?

गुरुदेव— दोनों तरफ की बात सुने बिना पुरे निश्चय से कुछ कहा नहीं जासकता, पर बहुत सम्भावना यही है पर ऐसी

हालतमें इसे उपेक्षा न समझना चाहिये।

रजनी— आपके तर्क और दृष्टान्तों का उत्तर नहीं है गुरुदेव, फिर भी मेरे साथ जो उपेक्षित व्यवहार किया जाता है उसका कारण समझ में नहीं आता।

गुरुदेव— देख बेटी! जिसप्रकार पहिले घंटों बातें करने का समय निकाला जासकता था उस प्रकार सदा नहीं निकाला जासकता। ऐसा करने से एक तो धंधा मारा जाता है, दूसरे इस प्रकार बातें करने के लिये नये नये विषय भी नहीं रहते। वही वही बातें बार बार करने से उनमे रस नहीं मिलता। इसके साथ जीवन की कला का, उसके गौरव का, तथा उपयोगिता का भी तुझे ध्यान रखना चाहिये। पति पत्नी दोनों गार्हस्थ्य जीवन के कार्यों में अधिक से अधिक व्यस्त होना चाहिये। पति अगर कार्य में व्यस्त रहे और पत्नी बेकार सी बैठी बैठी सिर्फ इसी बात की बाट देखती रहे कि ये काम छोड़कर मेरे साथ गप मारने कब आते हैं, तो इससे पत्नी का गौरव नष्ट होजायगा। उसकी उपयोगिता घटजायगी। यह जीवन कला का नाश होगा। इसलिये पत्नी को भी किसी न किसी काम में लगा रहना जरूरी है। और गप शप को उतना ही समय निकालना जरूरी है जितना पति भी निकाल सकता हो। दोनों एक दूसरे की बाट देखे इसी में स्वाद है, गौरव भी है। अपने को बेकार और बिलकुल सस्ता बना लेना कलाहीनता है।

रजनी— इस विषयमें अब मुझे अपनी कुछ भूल मालूम होरही है गुरुदेव!

गुरुदेव — हां बेटी! जीवन की कला यह सबसे बड़ी कला है। बड़ी से बड़ी विद्वत्ता मिल जानेपर भी यह कला नहीं मिलती। परन्तु अगर चतुरता से काम लेगी तो तेरी सभी समस्याएं सुलझ जायगी।

रजनी— और समस्याओं का हल भी बता दीजिये गुरुदेव!

गुरुदेव– तेरी समस्याएँ बहुत जटिल नहीं हैं बेटी ! अपनी जितनी जरूरत पति पूरी कर सकता है उसे बार बार बताने से या उससे ज्यादा बताने से पतिमें जरूरत पूछने की हिम्मत नहीं रह-जाती। यदि अपनी जरूरत बार बार न बताई जाय, और उसी की जरूरत पूछी जाय तो पति भी पत्नी की जरूरत पूछने का आदि होजाता है। तुम उसकी कर्तव्यशीलता पर धन्यवाद देने लगो, प्रशंसा करने लगो तो वह भी तुम्हें धन्यवाद देने लगेगा और प्रशंसा करने लगेगा। कहीं कहीं ऐसा भी होता है कि पति पत्नी को पूरी तरह मालकिन समझकर सारी कमाई पत्नी के हाथ में देकर निश्चिन्त होजाता है। तब अपने बजट की मर्यादा के भीतर रहकर पत्नी का ही कर्तव्य होता है कि वह अपनी जरूरतें पूरी करले तथा पति की जरूरतें भी पूरी करदे। इतना गौरव मिलजाने पर फिर आशा करना कि पति मेरी जरूरतें पूछा करे एक तरह की मूर्खता ही होगी।

रजनी– सचमुच मूर्खता ही होती है गुरुदेव !

गुरुदेव– यदि अपनी मूर्खता समझ में आगई तो समस्या की जटिलता समाप्त होगई। बाकी छोटी छोटी बातों का हल तो अपने आप सूझ जायगा। परोसने आदि की बातें तो बिलकुल मामूली हैं। शुरु में कुछ समय तक आदमी स्नेहवश जरूरत से ज्यादा भी खाजाता है पर कुछ समय बाद जब स्वास्थ्य को बिगड़ता देखता है तब उसे अधिक परोसने वाले से सहानभूति नहीं रहती। इस विषयमें विवेक से काफी काम लेने की जरूरत है। कौन सी चीज आग्रह करके परोसने लायक है, किसी के लिये पति वास्तवमें इनकार कर रहा है, किस के लिये शिष्टाचारी इनकार कर रहा है यह समझकर आग्रह की मर्यादा बाँधना चाहिये। फिर आग्रह का अपमान न होगा।

रजनी का चेहरा खिलगया। बोली बहुत कुछ समझ गई गुरुदेव ! अब मेरी निराशा दूर होगई है।

गुरुदेव-निराशा का दूर होजाना भी बीमारी की अच्छी से अच्छी चिकित्सा है। क्योंकि अपनी निराशा की छाया दूसरे पर भी पड़ती है और उस पर निराशा छाजाती है। इस तरह शिकायत और बढ़जाती है। अपने चेहरे पर आशा और उत्साह हो तो पति के चेहरे पर भी वह दिखाई देने लगेगा। मनुष्य मात्र में, खासकर पतिपत्नी में बिम्बप्रतिबिम्ब भाव रहता है। दर्पणमें हम जैसी सूरत देखना चाहें हमे अपनी सूरत वैसी ही बनाना चाहिये।

रजनी खिलखिला पड़ी। बोली- एक से एक बढ़कर अनमोल मंत्र सिखाये गुरुदेव आपने, मेरा तो सारा विष ही उतर गया। अब जाती हूं। सिद्ध किये गये मंत्रों को अजमाऊंगी।

इसके बाद गुरुदेव को प्रमाण करके रजनी चली गई।

एक हफ्ते बाद रजनी अपने पति को लेकर आई। दोनों ने गुरुदेव को प्रणाम किया। गुरुदेव ने रजनी से पूछा-क्या हाल है बेटी!

उत्तर दिया रजनी के पति चन्द्रप्रकाश ने- आपकी अनन्त कृपा से सब ठीक है गुरुदेव! रजनी देवी तो अब बिलकुल बदल-गई हैं। प्रसन्नता और सन्तोष इनके चेहरे पर नाचते रहते हैं।

गुरुदेव ने सन्तोष प्रगट करते हुए कहा—जीवन को ठीक तरह से समझने का दृष्टिकोण तो है। वह सुधार गया तो सारी भूलें सुधर गई।

चन्द्रप्रकाश ने कहा- भूले इन्हीं की नहीं थीं गुरुदेव, मेरी भी भूलें काफी थीं। पर मुझे भी अपनी नादानी समझ में आगई।

रजनी बोली- आपने ठीक कहा था गुरुदेव कि मनुष्यों में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव रहता है।

गुरुदेव ने हंसते हुए कहा- तेरी इस सफलता के लिये बधाई। पर यह तो बता कि अब तुझे प्यार की उम्र कितनी मालूम होती है?

रजनी बोली- अब तो वह अमर मालूम होता है गुरुदेव!

यह कहते रजनी मुसकराई, गुरुदेव हंसे, और चन्द्रप्रकाश ने अट्टहास किया।

८ सत्येशा ११९६०
८-१-६०

सत्यभक्त
सत्याश्रम वर्धा

९- गर्भवती कुमारी

आज सबेरे जब सुषमा गुरुदेव के दर्शन के लिये आई तब हर दिन की तरह न उसके चेहरे पर प्रसन्नता थी, न उसके मुंह से कोई शब्द निकला। प्रणाम करके वह एक तरफ बैठ गई। उसकी आंखे कह रही थीं कि इन आंखो ने रातभर नींद नहीं पाई है और रातभर बहती रही है।

गुरुदेव ने किसी घोर संकट की आशंका से पूछा— क्या बात है सुषमा, आज तो तुम्हारा चेहरा ऐसा है मानो रातभर तुमने नरक की वेदना सही हो।

सुषमा— नरक की ही वेदना सही है गुरुदेव, मेरा तो सर्वनाश होगया। मैं किसी को मुँह दिखाने लायक भी न रही।

गुरुदेव- बड़े से बड़ा संकट मनुष्य का सर्वनाश कर सकता है पर संकट कोई पाप तो नहीं है कि उसके कारण मनुष्य किसी को मुहँ दिखाने लायक न रहे।

सुषमा- पर मेरा संकट ऐसा ही है गुरुदेव, कि मैं किसी को मुँह दिखाने लायक न रही।

गुरुदेव- मैं तुम्हें खूब अच्छी तरह जानता हूं सुषमा, तुमसे ऐसा कोई पाप नहीं होसकता जिससे तुम मुँह दिखाने लायक न रहो।

सुषमा- मैं न सही तो मेरी बेटी सही। बेटी के पाप से भी तो मां का मुँह काला हो सकता है।

गुरुदेव- किसी के पाप से दूसरे का मुँह काला नहीं होस-

कता सुषमा, फिर मैं तुम्हारी लड़की को भी जानता हूं, उससे भी कोई पाप नहीं होसकता।

सुषमा—अब आपसे क्या कहूं गुरुदेव, शकुन्तला गर्भवती है।

समाचार ऐसा अप्रत्याशित था कि सुनकर काफी चौंका जासकता था पर गुरुदेव चौंके नहीं, किन्तु धैर्य से कहा—हूं, बात ज़रा खराब ही है। पर इससे जितना तुम्हारा या शकुन्तला का मुंह काला होसकता है उससे सौगुना काला तुम्हारे समाज का मुंह होसकता है।

सुषमा— समाज का इसमें क्या अपराध है गुरुदेव !

गुरुदेव— सारा अपराध समाज का है। इस समय शकुन्तला की क्या उम्र होगी ?

सुषमा— चौबीसवां चलरहा है।

गुरुदेव— उसकी शादी के लिये तुम कब से प्रयत्न कर रही हो ?

सुषमा— जब से वह पन्द्रह की हुई तभी से कर रही हूं।

गुरुदेव— शकुन्तला सरीखी सुन्दर स्वस्थ शिक्षित सुस्वभावी और गृह कार्य कुशल लड़की के विवाह की नव वर्ष तक कोशिश होती रही फिर भी उसकी शादी क्यों नहीं हुई ?

सुषमा— दहेज के अभाव गुरुदेव ! लड़की के योग्य वर के लिये हजारों का दहेज चाहिये जब कि मेरे लिये तो सौ दो सौ का इन्तज़ाम करना भी कठिन था। मेरे लिये तो लड़की का पालना पोसना भी कठिन था, फिर दहेज कहां से लाती।

गुरुदेव— क्या बिना दहेज के वर नहीं मिल सकता था ?

सुषमा— योग्य वर नहीं मिलसकता था। या तो ऐसा कंगाल अकर्मण्य मिलता था जो अपना भी पेट नहीं भर सकता था, या इतनी उम्र का जो उसका बाप सा मालूम हो या ऐसा दुराचारी जिसके साथ एक दिन भी निभना कठिन हो ऐसी हालत में बेटी की शादी कैसे कर देती। लड़का बड़ा श्रीमान होना चाहिये, ऐसी तो

शर्त मेरी थी नहीं, लड़की के अनुरूप हो और दोनों का पेट भर हो ऐसा मामूली लड़का भी बिना दहेज के नही मिलसकता था।

गुरुदेव- इसी से तो मै कहता हूं कि यह तुम्हारा नहीं सकता समाज का अपराध है। कन्यापक्ष कया को पालपोसकर जो दूसरे का घर बसाने का पुण्य करता है उसके बदले मे जिस समाज से दंड दिया जाता हो उस समाज के पाप का कुछ ठिकाना भी है! ऐसा पापी समाज एक दिन भी जिन्दा रहने लायक नहीं है।

सुषमा- पर आज तो उस समाज के सामने ही नाक रगड़ने का मौका आगया है गुरुदेव!

गुरुदेव- जो शैतान इस पाप के लिये जिम्मेदार हैं, उनके सामने नाक रगड़ने का क्या अर्थ है? और नाक रगड़ने से समाज तुम्हारा क्या कर देगा? समाज आदमियो का बनता है। हैवानों का या शैतानों का समाज नही बनता। जिनमें लडकी वाले हैवान ही हैवान हों, पुण्य करके सेवा करके जूते खाते हों, अपमानित होते हों, और लडकेवाले शैतान हो, पुण्यात्मा का अपमान करते हों सताते हों, इसप्रकार जिनमें इन्सान हो ही नहीं, उनका समाज क्या बनेगा? पशुओं के समान या तो झुंड बनेगा या शैतानों की टोली बनेगी।

सुषमा- शैतानों की टोली ही है गुरुदेव,

गुरुदेव- अब तुम ठीक समझगई। जो समाज शैतानों की टोली है या हैवानो का झुंड है उसके सामने झुकने की कोई जरूरत नहीं। उसके मुँहपर तो थूंकना ही चाहिये।

सुषमा- आप ठीक तो कहते है गुरुदेव, पर अब मैं क्या करूं? कहा जाऊं? इस समाज के मुँह पर थूंक दूं तो किस समाज मे जाऊं? और गर्भवती बेटी का क्या करूं?

गुरुदेव- बेटी ने जिससे सम्बन्ध किया है वह आदमी कहां है?

सुषमा- कुछ पता नहीं है, भागगया है। दिखने में बड़ा

सभ्य और शिक्षित मालूम होता था पर बड़ा धोखेबाज निकला।

गुरुदेव– जाने दो शैतान को; तुम और तुम्हारी बेटी दोनों निर्दोष हो। अब सब से पहिली जरूरत इस बात की है कि तुम दोनों ही अपनी निर्दोषता का अनुभव करो। डंके की चोट अपनी निर्दोषता घोषित करो निर्दोष की तरह सिर उठाकर चलो। समय पूरा होने पर बेटी के प्रसव कार्य में खूब हर्षसे भाग लो। फिर नाती पैदा होनेका आनन्द मनाओं। बेटी से कह दो कि वह शरमाये नहीं, घबराये नहीं जो कुछ हुआ है उसमे उसका कोई अपराध नहीं। अपराध उस शैतान समाज का है जो नारियोंकी और कन्यापक्ष की ऐसी दुर्दशा करता है और जिस पर तुम्हें थूकना है।

सुषमा– पर बिना समाजके कैसे चलेगा?

गुरुदेव– नहीं चलेगा, पर हैवानों और शैतानों के बीचमें रहने से और भी अधिक न चलेगा। इसलिये तुम इन्सानों के समाज में आओ। और वह समाज है सत्यसमाज। वहां तुम्हें कोई यह उलहना न देगा कि तुम्हारे नाती के बाप का पता क्यों नहीं है? न तुम्हें कोई इस बात से छोटा समझेगा कि तुम लड़के की मां क्यों नहीं हो, लड़की की मां क्यों हो?

सुषमा ने हाथ जोड़कर कहा– बहुत अच्छा मार्ग बताया गुरुदेव। आप की कृपा से हम दोनों नरक मे से निकल आईं।

गुरुदेव– अब तुम्हें नरक में से निकलकर ही नहीं रहजाना हैं किन्तु अपने उदाहरण से हजारो को नरकमे से निकालनेका मार्ग बताना है तथा स्वर्ग का निर्माण भी करना है तुमने लड़की को पाला पोसा जब वह सेवायोग्य हुई तब उसको घर से बाहर करना पड़े, मरते दम तक तुम्हें निस्सन्तान के समान अकेली बनकर रहना पड़े और अपने सिर पर यह दुर्दशा लादने के लिये दहेज के पाप से लुटना भी पड़े और अपमानित होना पड़े यह सब नरक ही नरक था। तुम इस नरक से निकलकर जगत् को राह बताओ कि आज से कन्यापक्ष इसप्रकार हानि न सहेगा।

पेट भर

सुषमाने प्रसन्नता से कहा– यह सब करूंगी गुरुदेव। श्रा
सत्यसमाज का किला आपने दे दिया है तब मुझे कोई डर नहीं है।

सुषमा बार बार प्रणाम करके चली गई।

२० जिन्नी १९६० इ. सं — सत्यभक्त
१६-३-६० उदयरात्रि ३॥ बजे — सत्याश्रम वर्धा

७– उपयुक्त वर

कृष्णा ने प्रणाम करके बैठते हुए कहा– बड़ी उलझन में पड़ी हूं गुरुदेव ! गीता के लिये उपयुक्त वर का चुनाव करना है। इस विषय मे मेरी और गीता के पिताजी की राय नहीं मिलती। अब आपकी जैसी सलाह हो वैसा किया जाय।

गुरुदेव– तुम्हारी राय क्या है ?

कृष्णा– गीता के लिये मैंने जो वर चुना है वह एक फर्म में अच्छे पदपर है। चार सौ से ऊपर वेतन मिलता है। देखने में गीता से भी सुन्दर है, अच्छा सुडौल गौरवदन है। घर भी भरा पूरा है।

गुरुदेव— पर क्या वह गीता के साथ शादी करने को तैयार है ?

कृष्णा– बड़ी मुश्किल से तैयार हुआ है गुरुदेव कई बार तो उसने इनकार कर दिया था। पर उसके पिताजी किसी तरह राजी हुए है। और पिता जी का लड़के के ऊपर अभी भी इतना रौब है कि लड़का भी इनकार नहीं कर सका।

गुरुदेव— लड़के के पिता का किसी तरह राजी होने से क्या मतलब ? कैसे राजी किया तुमने ?

कृष्णा– आजकल तो लड़कों को या उनके मातापिताओं को राजी करने का एक ही तरीका है कि उन्हें भरपूर दहेज दिया जाय। सो मैंने तय किया है कि पांच हजार तो नगद दूँगी तथा

च हजार विवाहमें खर्च करूंगी। मिहमानों को खिलाना पिलाना होगा तथा कुछ अन्य सामान भी देना होगा। सोचती हूं कि कुछ दस हजार में सारा काम निवट जायगा।

गुरुदेव- क्या इतने रुपये का इन्तजाम तुम्हारे पास है ?

कृष्णा- किसी तरह करना तो पड़ेगा ही। कुछ रुपया बैंक में है बाकी मैंने अपना गहना बेचने का निर्णय किया है। सोचती हूँ मेरी तो जिन्दगी निकलगई, किसी तरह लड़की की जिन्दगी सुखी कर जाऊं तो कृतकृत्य होजाऊं।

गुरुदेव — क्या दोचार दिन में मरने का फैसला कर लिया है तुमने ? लेकिन तुम्हारा शरीर ऐसा तो नहीं है कि वर्ष दो वर्ष में मरना निश्चित कहा जाय, फिर सब कुछ लुटाकर बाकी जिन्दगी में गुजर कैसे करोगी ?

कृष्णा- जैसे होगा सो देखा जायगा, भगवान मालिक है।

गुरुदेव — भगवान तो उनका भी मालिक है जो दर दर भीख मांगते फिरते है, और उनका भी मालिक है जो दिनरात मिहनत करके भी सुबह शाम भरपेट भोजन नहीं पाते। भगवान की मालिकी के भरोसे तो घर नहीं उजाड़ा जासकता। बेचारे भगवान पर लाखों कंगालों का यों ही काफी बोझ है, अब तुम कंगाल बनकर अपना भी बोझ क्यों लादती हो भगवान पर ?

कृष्णा- तो क्या करूं गुरुदेव !

गुरुदेव- सोचेंगे कि क्या करना है। पहिले यह तो जानलूं कि गीता के पिता की क्या राह है ?

कृष्णा- उनने एक दूसरा ही लड़का चुना है। वह बी. ए. है। डेढ़सौ रुपये माहपर एक स्कूल मे मास्टर है।

गुरुदेव — घर में कौन है और शरीर से कैसा है ?

कृष्णा — घर में सिर्फ एक विधवा मां है। गरीबी में दिन गुजरे हैं। लड़का ट्यूशन कर करके पढ़ा है। शरीर से स्वस्थ है

पर बहुत सुन्दर नहीं है। यद्यपि बदसूरत नहीं है फिर भी अपनी गीता उससे सुन्दर है। घर का एक मामूली मकान है जिसमें वे लोग रहते है। घर में काम चलाऊ सामान भी है कुछ रुपया बंक मे भी जमा है। शायद विवाह के लिये जोड़कर रक्खा है।

गुरुदेव— लड़के की क्या मंशा है ?

कृष्णा– वह दहेज नही चाहता है। गीता से मिलकर और बातचीत करके वह खुश है। उसका कहना है "स्त्रीधन के नामपर मैं पांचसौ का गहना लाऊंगा। सौ दोसौ रुपया और खर्च करूंगा, ज्यादा कोई खर्च न करूंगा। न मुझे आपसे कुछ खर्च करना है, न दहेज लेना है। बारात के नामपर जो हम पांचसात आदमी आयगे उन्हें आप एक दिन रोटी खिलादें इतना काफी है।"

गुरुदेव– लड़का कुछ गौरवशाली आदर्शवान और विचारक मालूम होता है।

कृष्णा— गीता के पिताजी भी यही बात कहते है। बल्कि वे तो यहां तक कहते है कि पहिला लड़का यदि दहेज न भी ले तो भी ऐसे गरीब लड़के के साथ शादी करना उचित है। पर उनकी यह बात मेरी समझ मे नही आती। ऐसे ऊंचे पद का और अच्छी आमदनी का, और गीता से भी सुन्दर लड़का क्यो छोड़ा जाय ?

गुरुदेव– इसीलिये कि जिससे गीता का जीवन सुखी बने।

कृष्णा— क्या ऐसे सम्पन्न सुन्दर लड़के के घर मे गीता सुखी न रहगी ?

गुरुदेव– नहीं ! उसका जीवन नरक बन जायगा ?

कृष्णा— उस लड़के का आपको कैसे पता लगा गुरुदेव !

गुरुदेव — मुझे कुछ भी पता नहीं है। लड़के के बारे में मेरी जानकारी उतनी ही है जितनी तुमने बताई है। और उसीसे पता लगा कि उसके साथ शादी करने से गीता का जीवन नरक बनजायगा।

कृष्णा— मेरी तो कुछ समझ में नहीं आया।

गुरुदेव– पर बात बिलकुल साफ है । लड़का गीता के साथ शादी नहीं करना चाहता तुम्हारे रुपयों के साथ शादी करना चाहता है । रुपया एक बार पल्ले पड़गया कि उसे गीता की क्या पर्वाह रहेगी ? फिर साधारणतः पुरुष में शक्ति देखी जाती है और नारियों में सौन्दर्य देखा जाता है पर जब वह स्वयं गीता से अधिक सुन्दर है तब उसके मन में गीता की क्या इज्जत रहेगी ? सम्भव है वह सौन्दर्य की प्यास बुझाने के लिये इधर उधर सम्बन्ध जोड़ले, और गीता की अवहेलना करने लगे, उसके असौन्दर्य का उल्लेख कर उसका अपमान करने लगे, तब गीता किस तरह जबाब देसकेगी, कैसे अपना गौरव सुरक्षित रख सकेगी ?

कृष्णा– इस तरफ तो मेरा बिलकुल ही ध्यान नहीं गया गुरुदेव !

गुरुदेव— दाम्पत्य जीवन तभी सुखी होसकता है कृष्णा, जब कि दोनों के पास कुछ ऐसी विशेषताएँ रहें जिससे दोनों ही आपस में एक दूसरे को जरूरत समझें । सब बात में पति यदि बढ़चढ़कर हो तो पत्नी पत्नी का गौरव न पा सकेगी, किन्तु दासी सी बनकर रहेगी । उपयुक्तता के लिये दोनों में कुछ ऐसी विशेषता चाहिये जिससे दोनों ही एक दूसरे की इज्जत कर सकें । पत्नी यदि असाधारण सुन्दरी हो तो उसके सौन्दर्य का जिन्दगीभर मूल्य चुकाते चुकाते पति का दम निकल जायगा । पति अगर बहुत सम्पन्न हुआ तब तो ठीक, नहीं तो सौन्दर्य का मूल्य चुकाने में असमर्थ पति को पत्नी की यथेष्ट सेवा न मिलेगी, यथेष्ट प्रेम न मिलेगा, जिन्दगी॰ भर उसका दम घुटता रहेगा । और पत्नी अगर पति के अनुरूप सुन्दर न हो और वैभव अधिकार आदि में पति बढ़ाचढ़ा हो तो पत्नी को अपनी सेवा का आधा भी मूल्य न मिलेगा । न वह पति को अपने प्रति वफादार रख पायेगी, न प्रेमका सच्चा साथी । तब घर में भी उसकी इज्जत रहेगी । इससे उसे शारीरिक असुविधा तो होगी ही साथ ही मानसिक कष्टों का भी पार न रहेगा । हां, यह

दूसरी बात है कि ये कष्ट बहुत दिनों तक न रहेंगे क्योंकि ऐसी अवस्था में पत्नी जल्दी मर जायगी। वह न मरेगी तो उसकी मानवता मर जायगी।

कृष्णा सिहर उठी। बोली–गीता का जीवन सुखी करने के लिये ही तो मैं कंगाल बनने को तैयार होगई थी। पर यदि उसका भी जीवन सुखी न हुआ तब तो मैं दोनों ओर से लुट जाऊंगी।

गुरुदेव– इस प्रकार दोनों ओर से लुटनेवालों ने ही दहेज की कुप्रथा को बढ़ाया है। उपयुक्त वर न ढूँढ़कर जब पैसे के बल-पर ऐसा वर ढूंढ़ा जाने लगा जिसके आगे कन्या का व्यक्तित्व बिलकुल दब जाय और पैसे के सिवाय उसका कोई अन्य मूल्य न मालूम हो तब कन्या के हितैषी बनकर भी उनके मातापिताओं ने अपनी कन्या को जीवन भर के लिये अनाथ दासी और बेइज्जत बनादिया। बाहर से वह सम्पन्न दिखती रही पर भीतर ही भीतर वह जिन्दगी भर नरक भोगती रही या पशु के समान जीवन बिताती रही। ऐसे विषम विवाहों ने जो दहेज को उत्तेजन दिया, उससे दहेज की प्रथा व्यापक होगई और उसका शिकार उन लड़-कियों को भी होना पड़ा जो गुणयोग्यता आदि में पति के पूर्ण उप-युक्त थीं। इसप्रकार विषम सम्बन्धों को धन से भरपाई करनेवालों ने अपनी कन्याओं का जीवन तो बरबाद किया ही, साथ ही लाखों कन्याओं की तथा उनके मातापिताओं की बर्बादी का सूत्रपात भी किया।

कृष्णा– तब मैं क्या करूं गुरुदेव, जिससे मेरी बेटी सुखी रहे।

गुरुदेव– गौरवशाली और सुखी जीवन बिताने के लिये लेन देन का पलड़ा बराबर रखना पड़ता है। इसलिये उपयुक्त वर वही कहा जासकता है जो कन्या के गुणों की पूरी जरूरत महसूस करे, और उसके कारण अपने को सौभाग्यशाली समझे. ऐसी अवस्था में दहेज के द्वारा उसे फुसलाने की जरूरत न रह जायगी।

उसके घर में कन्या जीवनभर सन्मान के साथ रह सकेगी। जब दोनों एक दूसरे के पूरक रहेंगे तब दोनों सुखी रहेंगे।

कृष्णा– बहुत ही साफ बात है गुरुदेव, न जाने मुझ अन्धी को ये सब बातें क्यों नहीं दिख रही थीं। आपने तो मेरी आंखें खोलदीं।

गुरुदेव– बहुत ठीक हुआ। पर गीता का झुकाव किधर है इसका कुछ पता लगा ?

कृष्णा– उसने कहा तो कुछ नहीं पर चेहरे से जरूर ऐसा मालूम हुआ कि पहिले लडके को देखकर और उससे कुछ बातचीत करके गीता जितना खुश था, उससे कई गुणा खुश वह गरीब लड़के से मिलकर थी।

गुरुदेव ने हंसते हुए कहा– तब गीता तुमसे ज्यादा समझदार मालूम होती है।

कृष्णा ने भी हंसते हुए कहा– समझदार होना ही चाहिये। आखिर आप भी तो यही कहते हैं कि दुनिया विकासशील है। इसलिये मां की अपेक्षा बेटी का विकास अधिक होना ही चाहिये।

गुरुदेव– मेरे सिद्धान्त की परख तो तभी होगी जब गीता तुम्हारी उम्रपर पहुँच जायगी। खैर ! यह परखापरखी होती रहेगी। खुशी की बात तो यह है कि उपयुक्त वर के चुनाव मे तुम्हारी उलझन मिटगई।

कृष्णा– बिलकुल मिटगई गुरुदेव ! आपकी कृपा से क्या नहीं होसकता।

२३ अंका ११९६० सत्यभक्त
१६–४–६० सत्याश्रम वर्धा

८– कहां जायें, क्या करें

करीमखां को देखते ही गुरुदेव ने पूछा—आज तो बहुत दिनों में आये करीमखां, कहो क्या समाचार है

करीमखां ने कहा क्या कहूं गुरुदेव, समझमें नहीं आता

कि हम लोग कहां जाये ? बाप दादों से इसी देश मे रहते आये है पर स्वराज्य मिलते ही बेगाने होगये ।

गुरुदेव ने कहा– गेहूं के साथ घुन भी पिसगया करीमखां ! जिन लोगों ने मजहब के नाम पर इस देश के टुकड़े कराये टुकड़े कराते समय दूसरों के लाखो कत्ल कराये और दूसरो से अपने भी लाखो कत्ल कराये इस प्रकार जिनने इस मुल्क को दोजख बनाया, उनकी करतूतों का यही फल होसकता था कि भारतमें लाखों मुसलमान अपने घरमें रहते हुए भी बेगाने बन जाय और पाकिस्तान मे लाखो हिन्दू भी अपने घर में रहते हुए बेगाने बन जाय ।

करीमखां– बटवारे के समय जो मरगये वे तरगये जो यहां से भाग गये वे फकीर होगये पर जो मुहब्बत के कारण रहगये वे बेकुसूर ही पीसे जारहे है ।

गुरुदेव– सचमुच कुछ बेकुसूर भी पिस रहे हैं पर ज्यादातर बेकुसूर नहीं हैं । मजहब के नाम पर टुकड़े कराने मे उनका भी हाथ है । यह कहना गलत है कि वे मुहब्बत के कारण नहीं जापाये । पैसे की कमी से या वहां रोजी का ठिकाना न होने से वे नही जापाये । बहुत थोड़े आदमी ऐसे थे जो मुहब्बतके कारण नहीं जापाये । और यह दुख की बात है कि उनमे से भी बहुतसे लोग पिस रहे हैं ।

करीमखां– पर यह तो उनके साथ अन्याय ही है गुरुदेव !

गुरुदेव– अन्याय तो है पर ऐसा अन्याय है कि जिसकी जिम्मेदारी अन्यायिओं पर नहीं है । जब इस देश के टुकड़े धर्म के कारण ही हुए और मुसलमानों का एक अलग राष्ट्र मानलिया गया तब यह स्वाभाविक है कि भारत के मुसलमान एक अलग राष्ट्र के समझ लिये जाय जो इस राष्ट्र में रहते हुए इस राष्ट्रके नही हैं वे इस राष्ट्रके प्रति वफादार कैसे माने जासकते है ?

करीमखां– तो हम लोग क्या करें गुरुदेव ! पाकिस्तानमे जा नहीं सकते और यहां वफादार माने नहीं जासकते, तो क्या

करोड़ों मुसलमान यतीम सरीखे पड़े रहें ?

गुरुदेव– ऐसी हालत न तो इस मुल्क के लिये फायदे की हो सकती है न मुसलमानों के लिये। कोई न कोई ऐसी सूरत तो निकालना ही पड़ेगी जिससे पाकिस्तान के हिन्दू पाकिस्तान के समाज में घुलमिल सकें और हिन्दुस्थानके मुसलमान हिन्दुस्थान के समाजमे घुलमिल सकें।

करीमखां– क्या पाकिस्तान के हिन्दू मुसलमान बनजायें ? और हम लोग सब हिन्दू होजायें ? क्या यह मुमकिन है ? खैर ! पाकिस्तान के हिन्दुओं की वे जाने, पर यहां हम हिन्दू कैसे होस-कते हैं ? पहिले तो हिन्दू समाज हमें मिलायगा कैसे ? अगर मिलाने को तैयार हो भी जाय तो हम लोग हिन्दू कैसे बनेगे ? हिन्दुओं को जातिपांति को हम पाप समझते हैं। कोई भी आदमी, वह बड़ा से बड़ा हो राम या कृष्ण हो उसे हम अल्लाह कैसे मान-सकते हैं ? ऐसी हालतमें हम यहां के समाज मे कैसे मिलें ? हिन्दू तो हम बन नहीं सकते।

गुरुदेव– नहीं बन सकते, न बनना चाहिये। हिन्दू धर्म भी हजारों वर्ष का पुराना मुर्दा धर्म है और इसलाम भी डेढ़ हजार वर्ष का पुराना मुर्दा धर्म है, आज दोनों ही किसी काम के नहीं। आज की विकसित समाज रचना, विकसित विज्ञान, नई नई उल-झनें, नरनारी समभाव आदि को देखते हुए, न हिन्दू धर्म किसी काम का है न इस्लाम। अब तो कोई ऐसा मजहब चाहिये जिसमें दोनों के गुण तो हों पर दोनों के दोष न हों। तभी इस मुल्क की समस्या हल होसकती है।

करीमखां– पर ऐसा तो कोई मजहब नहीं दिखाई देता।

गुरुदेव– है, ऐसा मजहब है और वह सत्यसमाज का सत्यधर्म है।

करीमखां– सत्यसमाज ! यह कौनसा मजहब है ?

गुरुदेव– यह जमाने का मजहब है, युग-

धर्म है। इसमें जातिपांति के सारे भेदभाव खत्म होजाते हैं। इसमें न ब्राम्हण क्षत्रिय वैश्य शूद्र के भेद हैं न शेख सैयद मुगल पठान के। इसमें मनुष्य मात्र की एक ही जाति है, फिर चाहे वह यूरोपियन हो चाहे आफ्रिकन (नीग्रो), चाहे शादी से पैदा हो चाहे व्यभिचार से, चाहे वेश्या सन्तान हो, इन बातों से सत्यसमाज में कोई भेद नहीं कियाजाता, गुण और आचार देखकर ही व्यवहार किया जाता है।

करीमखां- यह तो बहुत अच्छा समाज है गुरुदेव ! फिर भी ऐसा लगता है कि एक मुसलमान अल्लाह या खुदा को कैसे भूलजायगा ? मुहम्मद साहब को फारखती कैसे देदेगा ?

गुरुदेव- इसकी कोई जरूरत नहीं है। अल्लाह ईश्वर भगवान गॉड आदि सभी नाम यहां चलते हैं। मुहम्मद साहब का भी अदब किया जाता है पर साथ ही राम जी का भी किया जाता है। मुहम्मद छूटता नहीं है राम जुड़जाता है, अल्लाह छूटता नहीं है ईश्वर जुड़जाता है यदि मुसलमान इसे अपनाले तो मुसलमान खोयँगे कुछ नहीं, पा सब कुछ जायेंगे। इस देश के समाज से जो उनकी अलहदगी है वह भी समाप्त होजायगी।

करीमखां- पर क्या हिन्दू इस समाज में आयेंगे ? और आयेंगे तो क्या मुसलमानों का आना सहन करेंगे ?

गुरुदेव- इस समाज में सभी आये हुए हैं। हिन्दू मुसलमान ईसाई जैन बौद्ध आदि सब। भले ही हिन्दू कुछ ज्यादा हों। जो मुसलमानोंको सहन न करेंगे वे न आयेंगे। पर सवाल किसी के आने न आने का इतना नहीं है जितना अपने में सुधार करने का। थोड़ी देर को यह भी मानलो कि इस समाज में हिन्दू कोई न होता या बहुत थोड़े होते, सब मुसलमान ही मुसलमान होते या ज्यादातर मुसलमान होते, तो भी क्या बिगड़ता था। वे मुसलमान धर्मजातिसमभावी होते, अल्लाह के साथ ईश्वर भी कहते, मुहम्मद के साथ राम भी कहते, किसी मजहब की कोई भी गलत बात नहीं मानते

सदा अक्ल से काम लेते, किसी भी मजहब की अच्छाई होती तो उसकी तारीफ करते, और इसी प्रकार किसी भी मजहब की बुराई होती तो उसकी निन्दा करते, ऐसे मुसलमान सच्चे तो होते ही, साथ ही इस देश के लिये, इस देश की समाज के लिये बिलकुल अपने होते।

करीमखां— आज तो आपने बहुत ही खुशखबर सुनाई गुरुदेव ! पिछले बारह तेरह वर्षों से इतनी खुशखबर मेरे सुनने मे न आई थी। मुहम्मद साहब के साथ राम जी का नाम लेने मे मुझे कोई इतराज नहीं है गुरुदेव ! कुरान मे भी तो लिखा है कि अल्लाह ने हर मुल्क मे और हर कौम में पैगम्बर भेजे हैं और उनमें कोई फर्क नहीं करना चाहिये। ऐसी हालतमे एक मुसलमान मुहम्मद साहब और राम जीमें फर्क कैसे कर, सकता है ?

गुरुदेव— नहीं कर सकता, पर इसलिये नहीं कि कुरान में लिखा है, किन्तु इसलिये कि हमारी अक्ल से भी यह बात जचती है। पुराने जमाने में अपने जमाने और मुल्क की हालत देखकर पुराने महापुरुषों ने दुनिया का भला किया इसलिये हमें उनका अदब करना ही चाहिये। भले ही यह बात कुरान मे लिखी हो चाहे न लिखी हो। सत्यसमाजी कुरान की वेद की बाइबिल की गवाही तो लेता है पर उन्हें जज नहीं बनाता। जज अपने विवेक को, अपनी अक्ल को बनाता है। इसलिये सब का अदब करते हुए भी जो बात जिसकी नहीं जचती वह नामंजूर भी कर देता है।

करीमखां— यह तो और भी अच्छी बात हुई गुरुदेव, क्योंकि धर्मशास्त्रों में जो एक दूसरे से उल्टी बातें भी लिखी हैं, जिनपर झगड़ा होजाया करता है, उन झगड़ों की जड़ ही कटगई। क्यों कि जमाने के माफिक अक्ल से विचार कर जो बात अच्छी और सब के भले की मालूम होगी वही ली जायगी, बाकी सब छोड़ दी जायगी। झगड़े फिसाद की कोई बात कैसे आयगी ?

गुरुदेव— सत्यसमाज ने झगड़े फिसाद की जड़ ही उखाड़

दी है। यहां प्रेम और समन्वय का राज्य है, और ऐसा राज्य है है जो सत्य और विज्ञान पर खड़ा है । सत्यसमाजने बताया है कि आदमी मजहब के लिये नहीं है, आदमी के लिये मजहब है। आदमी की भलाई के लिये सारे मजहब कुर्बान किये जासकते हैं। मजहब यदि आदमी को सुख चैन से न रहने दे, मुहब्बत से न रहने दे सच्चाई को न अपनाने दे. बुरे रिवाजों को न छोड़ने दे. हैवानियत और शैतानियत को न हटाने दे तो ऐसा मजहब जल्दी से जल्दी ठुकरा देना चाहिये, समाप्तकर देना चाहिये।

करीमखां– सच कहा गुरुदेव आपने। हिन्दू मुसलमान आदि सभी के मजहब मुर्दे हैं, आज वे भलाई की अपेक्षा बुराई ही ज्यादा कर रहे हैं। महात्माओं का अदब करना बिलकुल ठीक, पर मुर्दा मजहबों से चिपककर रहना तो एक तरह की हैवानियत है। मैं महसूस करता हूँ कि मुहम्मद साहब का अदब करते हुए भी हर मुसलमान को इसलाम तो छोड़ ही देना चाहिये; भले ही हिन्दू अपना मजहब छोड़े या न छोड़े। इससे वे सत्य को पायेंगे अपना भला करेंगे। हिन्दू अगर असत्य से चिपककर रहना चाहते है तो भले ही चिपके रहें पर मुसलमान को तो सत्यसमाजी बनना ही चाहिये। फिर भी थोड़े बहुत हिन्दूओं का सत्यसमाजी बनना जरूरी है

गुरुदेव– सो तो हैं ही, और मुसलमानों से ज्यादा हैं। हालांकि पूरे सत्यसमाजी बननेपर यह भेद भुला ही देना है कि हम हिन्दू थे या मुसलमान, जैन थे या ईसाई आदि। हमे सब का एक समन्वयात्मक धर्म, एक जाति और एक संस्कृति बनाना है। इन भेदभावों को जड़मूल से उखाड़ देना है।

करीमखां– बहुत अच्छा काम है गुरुदेव, फिर भी है बहुत कठिन। मनुष्य एक बार अपने विचार जल्दी बदल सकता है पर

आचार सुधरने में कठिनाई है। हिन्दू मुसलमानों में खानपान की जुदी जुदी आदतें है, एक मांस खाता एक नहीं खाता, तब दोनों का एक समाज कैसे बनेगा ?

गुरुदेव– इन सब बातों पर सत्यसमाज ने काफी विचार किया है और अड़चनें दूर की है। हिन्दुओमे भी तीन चौथाई हिन्दू मांस खाते है इसलिये मांस को लेकर हिन्दु मुसलमानोंका भेद करना ठीक नहीं। हां ! भारत मे कई करोड़ हिन्दू ऐसे है जो मांस नहीं खाते। उनको कोई अड़चन न हो इसलिए सत्यसमाज ने यह नियम बना दिया है कि जब भी सत्यसमाजियों में सहभोज हुआ करे उसमें मांस का प्रयोग बिलकुल न किया जाय। इसलिये जहां तक मिलने जुलने और साथ भोजन करने का सम्बन्ध है वहां कोई बाधा है ही नहीं। सिर्फ विवाह की बात रहजाती है सो विवाह में सदाचार, सत्संग, वस्त्र, भोजन, विचारों की एकता, सद्जीविका, स्वास्थ्य, धन, शिक्षण, शिष्टाचार, भाषा, सौन्दर्य गृह, पथ, कर्मण्यता और प्रेम इस प्रकार सोलह गुणों का विचार करना पड़ता है, हिन्दू मुसलमान का या जांतिपांति का नहीं। ये सोलह गुण करोड़ों हिन्दू मुसलमानों में मिल सकते है इसलिये विवाह मे कोई बाधा नहीं हैं। बाकी दाढ़ी चोटी, मुर्दा जलाना गाड़ना, खानपान मे बैठने, बर्तनभांडे आदि के तरीके हैं वे ऐसे नहीं हैं कि दोनों के एक न होसकें सत्यसमाजी होनेपर किसी मे कोई पक्षपात तो रह नहीं जाता इसलिये उपयोगिता और अच्छाई की दृष्टि से जिसकी जो बातें अपनाने लायक हैं वे अपना ली जायगी। थोड़ी बहुत जो रह भी जायगी वे सहयोग मे बाधा न डाल सकेंगी। भारतीयता के नाते नाम और गोत्र आदि इस ढंग के रखना पड़ेंगे जिससे विदेशीपन न मालूम हो, इसके लिये भारतीय भाषाओं का, या सत्यसमाज ने मानवमात्र के लिये जो मानवभाषा बनाई है उसका; उपयोग करना पड़ेगा।

करीमखां– बस बस ! समझगया गुरुदेव ! अब कोई उल-

झन नहीं रही। हमारा तो भला इसीमें है कि हम सत्यसमाजी बनें। इसमें न मुसलमानों का अपमान है न हिन्दुओं का सन्मान। सच्चाई का सन्मान है और दोनों का उद्धार। खैर! सत्यसमाज में हिन्दू कितने भी आये हों हम सब को तो सत्यसमाजी पूरे रूपमें बन जाना चाहिये। आज आपकी दया से इस बात का पूरा जबाब मिलगया गुरुदेव कि हम कहां जायें और क्या करें? सत्यसमाजी बननेपर हम बेगाने नहीं रह सकते। न नाक नीची करने की कोई बात होसकती है। कल ही मैं सत्यसमाजी बनूंगा तथा और भी हजारों को बनाऊंगा सब को बनाने की कोशिश करूंगा।

गुरुदेव- आज के लिये यह सब से बड़ा पुण्यकार्य है करीमखां! जितनी जल्दी बन सके उतनी जल्दी करो!

२८ अका ११९६०　　　　　　　　　　सत्यभक्त
२८-४-६०　　　　　　　　　　सत्याश्रम वर्धा

९- सगर्भा दुलहिन

गुरुदेव ने पूछा-शकुन्तला का क्या समाचार है दुष्यन्त; पीहर से उसका पत्र तो आता होगा।

दुष्यन्त ने भरे हुए दिल से कहा-आता तो है गुरुदेव! श्रीमती जी तो विवाह के सात माह बाद ही मां बनगई है।

गुरुदेव— इतनी जल्दी प्रसूति होने का कारण क्या है! बीमारी का पहिले से कुछ पता न लगाया? उसकी हालत कैसी है? बच्चा जिन्दा है या नहीं?

दुष्यन्त- उनकी हालत भी अच्छी है, बच्चा भी तन्दुरुस्त है। बच्चा सात माह नहीं पूरे सवा नव माह का है।

गुरुदेव- यह सब तुम्हें कैसे मालूम हुआ?

दुष्यन्त- सब बातों का पता लगगया है गुरुदेव! विवाह के पहिले ही श्रीमती जी सगर्भा थीं। हम लोगों से यह बात छिपाई

गई। मेरा जीवन बर्बाद होगया सारा कुटुम्ब कलंकित होगया।

गुरुदेव- खैर ! तुम्हारे कुटुम्ब का तो इसमें क्या अपराध है जिससे उसे कलंक लगे। हां ! तुम्हारे दाम्पत्य जीवन की समस्या अवश्य है। वह भी सुलझ सकती है अगर तुम दोनों चतुर उदार ईमानदार और विचारक बनसको।

दुष्यन्त- अब क्या समस्या सुलझेगी गुरुदेव, जब शकुन्तला मेरे प्रति बफादार नही है, बच्चा भी मेरा नही दूसरे का है तब दाम्पत्य का आधार ही क्या रहा ?

गुरुदेव- शकुन्तला तुम्हारे प्रति बफादार है कि नहीं यह तो उससे चर्चा करने पर तथा उनके व्यवहार का निरीक्षण करने पर ही मालूम होसकेगा और बच्चे के विषय में तो चिन्ता तभी करना चाहिये जब कोई उसका दावेदार खड़ा होजाय। पर न ऐसा दावेदार कोई खड़ा होगा, न किसी भी न्याय या कानून से ऐसा दावेदार खड़ा होसकता है इसलिये इन बतों की चिन्ता करके निराश होने की कोई बात नही है।

दुष्यन्त- जब शकुन्तला ने इतनी बड़ी बात मुझसे छिपाली तब वह बफादार कैसे कहा जासकती है ? और बच्चा जब दूसरे के वीर्य का है तब मैं उसे कैसे अपना सकता हूं ?

गुरुदेव- बेबफा तो वह तभी कही जासकती है जब वह तुम्हारे प्रति पत्नी का कर्तव्य पूरा न करे, या ऊपरी मन से करे, मन ही मन तुमसे घृणा करे और दूसरे से प्रेम करे। ऐसी बातें बातचीत करने से, चेष्टाओं से, मुखाकृतियों से तथा व्यवहार से मालूम होसकती हैं। क्या इतने दिनों में कोई बात बेबफाई की मालूम हुई ? यहां आने पर एक बार मैं भी चर्चा करूंगा। सम्भवतः उससे भी कुछ पता लगेगा। तब तक उसे बेबफा या बफादार नहीं कहा जासकता।

दुष्यन्त— जब उनका सम्बन्ध दूसरे से हो चुका है तब यह कैसे हो सकता है कि शकुन्तला का मन उस में न लगा हो।

गुरुदेव- होसकता है पर यह भी हो सकता है कि उसने विश्वासघात किया हो और उस विश्वासघाती के प्रति शकुंतला को सख्त घृणा हो। और इसका परिणाम यह भी होसकता है कि तुम्हारे प्रति वफादारी बढ़गई हो, स्नेह बढ़गया हो।

दुष्यन्त- मुझे सान्त्वना देने के लिये आप एक कल्पित चित्र खींच रहे है गुरुदेव!

गुरुदेव- जिसकी अधिक सम्भावना है वही बात कह रहा हूं दुष्यन्त! फिर भी मैं यह नहीं कहता कि तुम बिना परीक्षा लिये उस बात को मानकर चलो। मैं सिर्फ सम्भावना ही बता रहा हूं। जांच करनेपर जो बात ठीक मालूम हो उसी के अनुसार कार्य किया जायगा। इसलिये अभी तुम धैर्य रक्खो एकबार शकुन्तला को तुम बुलालो। सब बात समझलो। जांच करलो। मेरे पास भी लेआओ। मैं भी बातचीत करके जांच परखलूं।

दुष्यन्त- पर यह कैसे करूं गुरुदेव? सब बात साफ होगई, दुनिया को मालूम होगई। अब बिना निर्णय किये उसे घर मे कैसे बुलालूं! फिर एक बार बुलालूं, और फिर आपके द्वारा बताये गये तरीकों से जांच करने पर मालूम हुआ कि वह वफादार नहीं है तो फिर कैसे निकालूं? उसकी मां तो फिर ले न जायगी, तब मैं कहां धक्का दूंगा?

गुरुदेव- ठीक है, तुम्हारी आशंका भी ठीक है। तब तुम सीधे यहां आने के लिये सूचित करदो! मैं जांच करलूंगा, तुम्हारे सामने भी सब बातचीत करलूंगा, फिर अगर वफादार मालूम हो तो रखना, न मालूम हो तो उसकी वह जाने।

दुष्यन्त चुप रहा। उसके पास कोई उत्तर न था फिर भी मन इसकेलिये तैयार न था। थोड़ी देर चुप रहकर उसने हिचकते हुए कहा-मानलीजिये कि मन उसका ठीक है, वफादारी भी है, पर जब शरीर अशुद्ध होगया है और इसका पता भी लगगया है तब उसे कैसे रक्खा जासकता है?

गुरुदेव ने कहा– शरीर तो हाड़ मांस आदि का बना है! जितनी अशुद्धियाँ हैं वे शरीर के सम्पर्क से ही होती हैं इसलिये शरीर के शुद्ध अशुद्ध की तो बात ही व्यर्थ है। फिर अगर शरीर को अशुद्ध कहना हो तब वह किसी बीमारी से, खासकर संक्रामक बीमारी से, कहा जासकता है, पर वह अशुद्धि स्थायी नहीं है, रोग दूर होने पर चली जाती है। और न भी जाय तो बीमारी की अशुद्धि के कारण न घृणा की जाती है न आदमी को छोड़ा जाता है! और इस अशुद्धि से यहां मतलब भी नहीं है। यों दूसरे के साथ सम्पर्क होने को यदि अशुद्धि कहा जाय तो ऐसी अशुद्धि पुरुषों में भी होती है विवाह के पहिले और विवाह के बाद भी बहुत से पुरुष इस प्रकार अशुद्ध होजाते हैं। पुरुष जब दूसरा विवाह करता है तब वह पहिली पत्नी के सम्पर्क से अशुद्ध ही रहता है विधवाएँ भी पुनर्विवाह करें तो पहिले पति के सम्पर्क से अशुद्ध ही रहती हैं। ऐसी बातों से यदि अशुद्धि मानी जाय और उससे डरकर चला जाय तो सामाजिक व्यवहार चल ही नहीं सकता। नारी नारी है इसलिये उसकी अशुद्धि अक्षन्तव्य है और पुरुष पुरुष है इसलिये उसकी अशुद्धि क्षन्तव्य है इस पक्षपाती तरीके से सत्य विचार नहीं किया जासकता। लैंगिक अहंकार को छोड़कर ही जीवन की सुविधा असुविधा का ध्यान रखकर निर्णय करना चाहिये।

दुष्यन्त चुप रहा। इस विषय में अब कुछ तर्क करने की गुंजाइश न थी। पर उसके जैसे संस्कार थे और जिसप्रकार इस घटना से उसका आशाभंग हुआ था उससे उसका मन तैयार नहीं होरहा था। इसलिये बच्चे का निमित्त लेकर उसने कहा कि– मान लीजिये शकुन्तला बेवफा नहीं है, पर बच्चे का क्या होगा? वह तो मेरा नहीं है।

गुरुदेव– अगर कोई खेत तुम्हारा होगया है तो उस खेत में पैदा हुआ झाड़ भी तुम्हारा होगया है भले ही उसे किसी दूसरे ने बोया हो। बच्चे को अपना मानलेने से फिर कोई उलझन नहीं

रहती। पितापुत्र का सम्बन्ध अपना मान लेने पर ही निर्भर है। अन्यथा माता और पुत्र का सम्बन्ध जैसा स्पष्ट रहता है वैसा पिता और पुत्र का सम्बन्ध स्पष्ट नहीं रहता। पत्नी की सन्तान होने से ही बच्चा पिता की सन्तान कहलाने लगता है। इसी कारण पिता पर सन्तान पालन की जिम्मेदारी आती है, सन्तान के मन में पिता के प्रति स्नेह होता है। सन्तान पिता को इसलिये पिता नहीं मानती कि वह उसके वीर्य से पैदा हुई है किन्तु इसलिये मानती है कि वह पिता का कर्तव्य पूरा कर रहा है और माँ ने बता दिया है कि वह सन्तान का पिता है। इसप्रकार शकुन्तला की सन्तान के पिता बनने में न कोई अड़चन है न तुम्हारा कोई नुकसान है। धृतराष्ट्र पांडु विदुर युधिष्ठिर भीम अर्जुन नकुल सहदेव जैसे विख्यात महापुरुष यदि नियोग से पैदा होसकते हैं, खेत में मिली सीता यदि जनक पुत्री के रूप में विख्यात होसकती है और दोनों में पिता पुत्री का रिश्ता पूरी तरह निभ सकता है तो कोई कारण नहीं कि शकुन्तला की सन्तान के साथ तुम्हारे पितृत्व के निभने में बाधा पड़े। बल्कि समय आरहा है कि मनुष्य जाति के भले के लिये नियोगज सन्तान का रिवाज चलाना पड़े। निर्बल कुरूप और रोगी पुरुषों की सन्तान से जो लाखों वर्षों से मानव जाति की हानि होरही है उसे तान्त्रिक नियोग (पिचकारी) के द्वारा पैदा हुई सन्तान से दूर करना पड़ेगा। अयोग्य पुरुषों की सन्तानोत्पादन क्षमता अपरेशन के द्वारा कानूनन बन्द कर देना पड़ेगी। वे विषय-सुख पासकेंगे पर सन्तान पैदा न कर सकेंगे। फिर भी वे सन्तान से वञ्चित न रहेंगे क्योंकि पिचकारी के द्वारा उनकी पत्नी को गर्भधारण कराया जायगा और इससे उन्हें सन्तान की प्राप्ति होगी। इतना ही नहीं, इससे आगे चलकर उन स्त्रियों को भी सन्तान पैदा करने का अधिकार न रहेगा जो रुग्ण हैं कुरूप हैं निर्बल हैं। उन्हें प्रसूतिगृह से ही दूसरों के बच्चे गोद मिलेंगे। जिनके दो या तीन से अधिक सन्तान पैदा होगी उनके बच्चे ऐसे दम्पतियों को गोद दिये जायँगे। इससे बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या भी सुलझेगी और

मनुष्य की नस्ल भी सुधरेगी। आफ्रिका के हब्शियों में तो तांत्रिक नियोग की सन्तान का आम रिवाज बनाना पड़ेगा जिससे वह जाति सुन्दर गौरवर्ण और लम्बकेशी बनसके। इसप्रकार इतिहास में जब नियोगज सन्तान को महत्वपूर्ण स्थान है, भविष्य में आम तौर पर उसका विधान बनाना है, वर्तमान में भी बच्चा गोद लेने का जब रिवाज बना हुआ है और पुनर्विवाह में अब ऐसी घटनाएँ होती ही रहती हैं तब तुम्हें शकुन्तला के बच्चे को अपनाने में कोई बाधा न मानना चाहिये।

दुष्यन्त– गुरुदेव, आपकी बातें प्रिय हों या अप्रिय परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनमें सत्य भरपूर है। बच्चे के बारे में जो कुछ आपने कहा है उससे इस विषय का मेरी भ्रान्ति दूर होगई है। सवाल है शकुन्तला का। उसके बारे में भी जो आप की आज्ञा होगी वही किया जायगा।

गुरुदेव– तो बस, शकुन्तला को मेरे पास आने के लिये लिखदो।

(२)

करीब दो हफ्ते बाद जब शकुन्तला एक छोटे से सुन्दर शिशु को लेकर गुरुदेव के पास आई तब उसके साथ उसकी मां भी थी और दुष्यन्त भी उपस्थित था। गुरुदेव ने शकुन्तला से कहा— बेटी, तुमसे जो भूलें हुई हैं वे यद्यपि मानवस्वभाव की सहज दुर्बलता का परिणाम हैं परन्तु उससे जो समस्याएँ पैदा होती हैं वे इतनी बड़ी हैं कि उनसे कई व्यक्तियों का ही नहीं, कई कुटुम्बों का जीवन बर्बाद होसकता है। समाज के वर्तमान वातावरण में तो ऐसी भूलें क्षन्तव्य भी नहीं होतीं परन्तु यदि उदारतावश उस वातावरण से ऊपर भी उठा जाय तो भी कई मनोवैज्ञानिक और कौटुम्बिक उलझनें पैदा होती हैं। इसपर ठीक ठीक विचार करने के लिये जरूरी है कि तू सारी घटना आदि से अन्त तक ज्यों की त्यों सुनादे। कोई बात छिपाना नहीं, बदलना भी नहीं, तभी ऐसा निर्णय किया जाय-

केगा जिससे सभी के साथ न्याय हो और सभी का कल्याण हो। तुझसे मैं पूरी तरह सत्य बोलने की आशा रखता हूं।

शकुन्तला, जो चुपचाप बैठे बैठे आंसू पोछ रही थी, ने कहा-मैं कुछ भी नहीं छिपाऊंगी गुरुदेव! जो वास्तविक अपराधी है वह तो निकलभागा, पाप का सारा फल मुझे ही भोगना है सो जैसे बनेगा वैसे भोगूंगी, पर किसी निर्दोष जीवन को संकट में अब न डालूंगी। इस विषय में जो गलती होगई वह होगई पर अब वह गलती न दुहराऊंगी, न लम्बाऊंगी।

यह कहते कहते शकुन्तला का गला भर आया और वह फबक पड़ी। उस समय सभी की आंखों में आसू आगये। पर वातावरण में एक तरह की निस्तब्धता रही।

थोड़ी देर में शान्त होने के बाद शकुन्तला ने कहा— मेरी पापकथा बहुत लम्बी नहीं है गुरुदेव! एक विश्वासघाती ने प्रेम की और भविष्य के सुनहरे दाम्पत्य जीवन की बातों से मुझे विश्वास में लिया और पीछे धोखा देकर भागगया मैं उस विश्वासघाती पापी को तो कोई दंड न दसकी, पर स्वार्थवश इन्हें फसा लिया। इसका मुझे तभी से पश्चात्ताप है। पर अब क्या? जो होगया सो होगया। ये अगर मुझे छोड़ देते हैं तो मेरी दुर्दशा चाहे जितनी हो पर मैं इन्हें कोई दोष न दूंगी। न इनका एक पैसा अपने पास रक्खूंगी। यह पोटली है। इसमें वे सब गहने हैं जो इनने विवाह के समय मुझे चढ़ाये थे। वह कीमती साड़ी भी है। निशानी के रूप में मैंने सिर्फ एक अंगूठा बचा ली है। आशा है इसकेलिये ये मुझे माफ करेंगे।

अन्तिम वाक्य अधूरा ही निकला। शकुन्तला फबक फबक कर रोने लगी, और उसकी मां का भी यही हाल हुआ।

गुरुदेव ने कहा- धीरज रख बेटी, कभी कभी नादानी से मनुष्यसे भूल होजाती है, पर अगर भूल सुधार सच्चे दिलसे किया

जाय तो भूल क्षन्तव्य बनजाती है।

शकुन्तला ने आंसू पोछते हुए कहा– अपने दिल की बात क्या कहूं गुरुदेव ! हृदय अगर चीरकर बताने की चीज होती तो चीरकर बतादेती कि उसमें कैसा पश्चात्ताप भरा है, किसके प्रति असीम घृणा और किसके प्रति असीम प्रेम और कृतज्ञता का भाव भरा है। पर शब्दों से क्या कहूं और किस मुँह से कहूं ?

गुरुदेव– बेटी ! कहने लायक तूने बहुत कुछ कहदिया है। फिर भी एक बात साफ साफ कहला लेना जरूरी है। नारी हृदय की यह कमजोरी प्रसिद्ध है कि एक बार जिससे उनका प्रेम सम्बन्ध होजाता है उसकी छाप जीवनभर नहीं निकलती। वह अगर दुष्ट भी निकलता है तो भी वे उसे नहीं भूलतीं। ऐसी नारी के साथ दाम्पत्य जोड़ने से जीवन मे एक ऐसी उलझन पैदा होजाती है जो कभी नहीं सुलझती। इसी का खुलासा तुझे करना है।

शकुन्तला- क्या खुलासा करूं गुरुदेव ! जिस आदमी ने ऐसा विश्वासघात किया हो, नारी के जीवन को बर्बाद कर दिया हो उस आदमी का खून पीने की बात नारी न सोचेगी, उसके पेट में कटारी भोकने की बात नारी न सोचेगी उसका प्रेम से स्मरण करेगी, इस बात की तो मैं कल्पना तक नहीं कर सकती। मुझे दुनिया का बहुत कम अनुभव है गुरुदेव, सम्भव है ऐसी नारियाँ भी होती हों जिनका जीवन इस बात में एक कुत्ती से भी गया बीता हो पर मेरी छोटी बुद्धि तो ऐसी नारी की कल्पना भी नहीं कर सकती।

गुरुदेव– तू कल्पना नहीं कर सकती यह तेरा परम सौभाग्य है शकुन्तला। पापों पर इतना पुण्यप्रकोप मनुष्य को होना ही चाहिये। आश्चर्य तो यही है कि तू यह बात दुष्यन्त से कैसे छिपा सकी ? यह बात तेरे स्वभाव के विपरीत मालूम होती है।

शकुन्तला की मा बोली– इसका खुलासा मैं करूंगी गुरु-

देव ! आपने शकुन्तला से कहा था कि कोई बात छिपाना नहीं, सो इसने सब बात साफ साफ कहदी पर एक बात यह छिपागई। जब मैंने यह सम्बन्ध जोड़ा तब इसने कहा कि "मैं किसी सज्जन को धोखा नहीं देसकती ! मैं मर जाऊंगी, कुमारी रहूंगी, या जैसा भी होगा वैसा करूंगी पर न तो उस विश्वासघाती को अपनाऊंगी, न किसी सज्जन को धोखा दूंगी।" पर मैं अपनी कमजोरी क्या कहूं गुरु-देव ! मेरी एक मात्र सन्तान यह शकुन्तला ही है। मैंने इसे बड़े कष्टों से पाला है। मेरी इच्छा थी कि इसका जीवन सुखी हो। इसलिये मैंने इसे आत्मघात की धमकी देकर यह बात छिपाये रखने के लिये राजी किया। इसकी इच्छा तो विवाह के पहिले ही सारी परिस्थिति साफ साफ रखदेने की थी। मैंने ही अपने मातृत्व का सारा प्रभाव खर्च करके इसे रोका, और धोखेबाज बनाया। इस बात का सारा अपराध मेरा है। हां ! यह बात मैं कहदेती हूं कि उस विश्वासघाती के प्रति परमाणु बराबर भी प्रेम इसके मनमें नहीं रहा है। यद्यपि यह उसे भूल नहीं सकती पर इसका कारण प्रेम नहीं घृणा है, विश्वासघात के घाव का दर्द है। दुष्यंत यदि इसे अपना लेंगे तो यह जीवनभर इतनी कृतज्ञ रहेगी कि महासतियों का सतीत्व भी इससे बढ़कर न हो सकेगा। अब जैसा आप उचित समझें करें।

गुरुदेव ने दुष्यन्त की तरफ देखकर कहा—दुष्यंत, तुम्हारी जो आशंका थी उसका समाधान तो अब होगया होगा।

दुष्यंत ने कहा— होगया गुरुदेव ! पूरी तरह समाधान होगया। अब मैं शकुन्तला देवी को अपनाता ही नहीं हूं किन्तु इसे अपना भाग्य समझता हूं।

३ तुपी ११९६० इ. सं.
१९-८-६०

सत्यभक्त
सत्याश्रम वर्धा

१० निराश युगल

प्रतिदिन सुबह गुरुदेव घूमने जाया करते थे। सड़क के किनारे बस्ती के बाहर एक पुराना खंडहर था। उसी के बगल में एक बड़ा और गहरा कुआ था। किसी दिन वहां छोटी सी बगीची रही होगी पर आजकल वह बीरान थी। गुरुदेव कभी कभी उस कुए के किनारे दस पाच मिनिट बैठ जाया करते थे। उस दिन जब वे बैठने गये तब उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उनने वहां एक युवक युवति को कुये मे पैर लटकाये हुए पास पास बैठे देखा। युवकके हाथमे एक रस्सी थी जिसके छोड़ने उन दोनोंने अपना शरीर बाँध लिया था। बाकी रस्सी खुली थी। पहिले तो गुरुदेव को सन्देह हुआ कि ये दोनों कुए में तैरने की तैयारी में हैं। पर उनके चेहरे पर वह उल्लास नहीं था जो जलक्रीडा के समय मनुष्यमे होता है। चेहरे पर मुर्दनी छाई हुई थी। आखों मे आंसू थे। गुरुदेव को देखते हुए वे सहम गये। गुरुदेव ने उन्हें पहिचान कर कहा– यह क्या बात है शशिकान्त ? इतने सबेरे इस लड़की को लेकर इस एकान्त में आने का कारण ?

शशिकान्त चुप रहा।

गुरुदेव ने कहा– मेरे सामने संकोच का कोई कारण नहीं है शशिकान्त, तुम मुझे जानते हो। बात कुछ भी हो मुझ पर प्रगट कर देने से तुम्हारा अकल्याण कभी न होगा।

शशिकान्त की आंखो से आंसु बहने लगे। उसने कहा– हम दोनों जिन्दे रहकर मिल सकें ऐसी कोई आशा नहीं रही गुरुदेव, इसलिये अब मरकर ही मिलने का विचार किया है।

गुरुदेव ने चेहरे पर रोष लाते हुए कहा– बहुत अच्छा विचार किया, कायर कहीं के ! इतने बड़े हट्टे कट्टे जवान, और इतना शिक्षण, फिर भी किसी महान कार्य करने की तो बात दूर, पर जीने तक की हिम्मत नहीं कायरता की पराकाष्ठा !

दोनों की आंखें नीची होगईं ।

गुरुदेव ने कहा– इतने जवान होकर और पढ़लिखकर भी यदि तुम माबाप के सहारे बिना चार रोटियाँ भी नहीं कमासकते तो तुम्हारे जवान होने और पढ़ने लिखने का क्या लाभ ?

शशिकान्त बोला– रोटियों का सवाल नहीं था गुरुदेव । हम दोनो के ही विवाह को नापसन्द करते थे । मेरी मां ने तो कहा था कि तुम दोनों विवाह करोगे तो मैं विष खालूंगी ।

गुरुदेव– और अब तुम दोनों की जुड़ी हुईं लाशें देखकर तुम्हारी मा शायद उत्सव मनायगी ?

शशिकान्त– उत्सव तो न मनायगी पर विष भी न खायगी ।

गुरुदेव– जो तुम दोनो की इस तरह जुड़ी हुई लाश देखकर भी विष न खायगी वह तुम दोनो की शादी होने पर भी विष न खायगी । इस तरह की लाशे देखकर भी विष न खाने वाली वज्रहृदया मा शादी देखकर विष खालेगी यह असम्भव है ।

शशिकान्त– विष भले ही न खाय पर तड़पेगी जरूर ।

गुरुदेव— और तुम दोनो की लाश देखकर क्या करेगी ?

शशिकान्त— फिर कुछ भी करे, मै देखने न आऊंगा ।

गुरुदेव— यही तो तुम्हारी कायरता है । तुम मां बाप को दुख से नहीं बचाना चाहते सिर्फ यह चाहते हो कि तुम्हें उनका दुःख देखना न पड़े। तुम सिर्फ अपनी आखे बन्द करना चाहते हो । कैसी आत्मवञ्चना है यह! कैसी कायरता है यह! इससे अच्छा तो यह था कि तुम दोनो प्रेम की इस राह से लौट जाते ।

शशिकान्त– गुरुदेव, हम दोनों इस राह में फिसलकर इतने नीचे आगये हैं कि जहां से लौटना सम्भव ही नहीं है । सच पूछा जाय तो हमारा विवाह हमारी नजरों में और परमेश्वर की नजरों मे होचुका । पर समाज इसे मानने को तैयार नहीं । उसकी

नजरों में हम दोनों की जाति अलग अलग है धर्म अलग अलग है। पर हम दोनों को नजर में और ईश्वर को नजर में हम दोनों को एक ही जाति है मनुष्य, एक ही धर्म है प्रेम। इस दृष्टि से विवाह के और उसके बाद के सारे कृत्य परमेश्वर के सामने हम कर चुके। पर समाज के सामने हम अपराधी हैं। तीन माह बाद मैं किसी सन्तान का पिता बननेवाला हूं।

गुरुदेव ने मुसकराते हुए कहा- अच्छा! तो सन्तानोत्सव के पैसे बचाने के लिये तुम लोगों ने यह राह निकाली है।

गुरुदेव की बात सुनकर उस विषादपूर्ण वातावरण में भी दोनों के चेहरों पर मुसकराहट आगई। गुरुदेव के मुँह से इस तरह बेतकल्लुफी से वात्सल्यपूर्ण बातें सुनकर लड़की की हिम्मत बढ़गई थी। वह बोली-इनके लिये तो लौटने का रास्ता था क्योंकि ये पुरुष हैं। लौट नहीं सकती थी मैं। मैंने इनसे कहा भी कि तुम पुरुष हो तुम्हारे जीवन में ऐसे कलंक मालूम भी न पड़ेंगे। मौत है नारी की, इसलिये मुझ अकेली को ही मरने दो। पर इनने मेरी बात न मानी। बोले- पुरुष का जीवन क्या इतना काला है कि उसमें कलंक मालूम न पड़े और नारी का जीवन क्या इतना सफेद है कि जरा सा धब्बा भी दूर से दिखजाय। कलंकी हैं तो दोनों हैं इसलिये मरेंगे तो दोनों मरेंगे, जियेंगे। तो दोनों जियेंगे।

गुरुदेव- शाबाश शशिकान्त। समझ में नहीं आता कि जिवनयुद्ध से भागने की तुम्हारी कायरता की निन्दा करूं, या इसप्रकार ईमानदारी पर अटल रहने की मानवता की तारीफ करूं? पर विवेक के बिना सब गुड़ गोबर होगया। जब तुममें इतनी वफादारी थी, ईमानदारी थी तब तुमने मरने का रास्ता ही क्यों पकड़ा? जीवन का रास्ता क्यों न पकड़ा?

शशिकान्त— पर समाज के बिना मैं कैसे जीसकता था गुरुदेव।

गुरुदेव— तुमने जो कुछ किया क्या उसे पाप समझते हो?

शशिकान्त — मैं इसे पाप नहीं समझता। हां ! विश्वासघात करता तो जरूर पापी होता। पर पापी रहकर मैं समाज के दंड से बच सकता था पर निष्पाप रहकर नहीं बचसकता।

गुरुदेव– जिन लोगों में निष्पापता दंडनीय हो और पाप अदंडनीय हो, क्या तुम उनके गिरोह को समाज समझते हो ?

शशिकान्त– समझता तो नहीं हूँ पर जब कोई सच्चा समाज न हो तब उस गिरोह को ही समाज मानना पड़ता है।

गुरुदेव— मतलब यह कि जिन्दा आदमी न मिलता हो तो आदमी की लाश से आदमी का काम लेना पड़ता है।

शशिकान्त- चुप रहा, लड़की मुसकराकर रहगई।

गुरुदेवने कहा–देखो शशिकान्त, मां-बाप भी जब मरजाते हैं तब उनकी लाश को जलाना ही पड़ता है, और उनकी जगह जिन्दों को देना पड़ती है। जो समाज मर गया, लाश होगया उसकी अन्त्येष्टि करना ही कर्तव्य है।

शशिकान्त– हम इसकी अन्त्येष्टि तो कैसे कर सकेंगे, अभी तो हमारी ही अन्त्येष्टि की समस्या है।

गुरुदेव– सो तो रहेगी ही। जब तुम सरीखे समर्थ और ईमानदार युवक भी कायरता दिखायेगे तब मुर्दों के बदले जिन्दों की अन्त्येष्टि होती रहेगी।

शशिकान्त– तो हम लोग क्या करें गुरुदेव ?

गुरुदेव– जिस बात को तुम सत्य समझते हो और जीवन में उतारना चाहते हो उसके लिये शरमाओ नहीं, डरो नहीं, घबराकर भागो नहीं। डंके की चोट करके दिखाओ ! समाज को अपना बहिष्कार करने का मौका न दो परन्तु तुम स्वयं समाज का बहिष्कार करो।

शशिकान्त– पर सब का बहिष्कार करके अकेले कहां बैठें ?

गुरुदेव– अकेले बैठने की जरूरत नहीं है। क्रान्तिकारियो

का, विवेकियों का, सत्यप्रेमियों का, समाज है सत्यसमाज । इसमें जातिपांति आदि का कोई भेदभाव नहीं है । यहां मनुष्यमात्र की एक ही जाति है, एक ही संस्कृति है, एक ही कुटुम्ब है । यहां परम्परा की कोई गुलामी नहीं है, विश्वकल्याणकारी सत्य को स्वीकार करना और सदा करते रहना ही यहां की नीति है । इसलिये मरो नहीं ! भागो नहीं ! पर सीना तानकर डटो !

दोनों उठे, और साश्रु नयनों से गुरुदेव को प्रणाम किया ।

२ मुंका ११९६० इ सं. सत्यभक्त

१०-९-६० सत्याश्रम वर्धा

११ बहू पर शासन

कौशल्या ने शिकायत के स्वर में गुरुदेव से कहा–कैसा जमाना बदलगया है गुरुदेव ! आजकल की बहुएँ सासू को कुछ समझती ही नहीं ?

गुरुदेव ने हँसते हुए कहा– कुछ क्यों नहीं समझतीं ? सासू को सासू समझती हैं क्योंकि सासू को सासूजी के नाम से पुकारती हैं ।

कौशल्या– यह क्या समझना हुआ ? समझती थीं हम लोग । मजाल क्या कि सासू के सामने कुछ उत्तर देसकें, या उनके सामने पति से बातचीत कर सकें, या उनके हुक्म से इनकार कर सकें । वे पहर भर रात रहते मुझे चक्की पीसने को उठा देती थीं । नींद के मारे चक्की चलाते चलाते हाथ रुक जाया करते थे । तब वे चुपचाप अनाज की टोकनी उठा लेती थीं और आग की गुर्सी (मिट्टी का बर्तन जिसमें आग जला करती थी) रख देती थीं । और तब मेरी अंगुलियाँ अनाज के बदले आग में पड़कर झुलस जाया करती थीं फिर भी मैं शिकायत नहीं कर सकती थी, यहां तक कि रो भी नहीं सकती थी । ऐसा था बहुओं के ऊपर सासू का शासन । पर आज सासुओं को कौन पूछता है ?

गुरुदेव ने जरा गहरी सी सांस लेकर कहा– सचमुच मनुष्य समाज घोर जंगली और क्रूरयुग में से गुजरता रहा है। उस युग में मनुष्य कैसा जानवर था, कैसा क्रूर था, आज आश्चर्य होता है!

कौशल्या– बहुओं पर अनुशासन रखना क्या जंगलीपन था गुरुदेव?

गुरुदेव– कोई कार्य अनुशासन का तभी कहलाता है जब उसमें अनुशासित व्यक्ति का भी भला हो। अपना बड़प्पन लादने और अधिकार का तांडव करने का नाम अनुशासन नहीं है, निरपराध को सताने का नाम अनुशासन नहीं है।

कौशल्या– कर्तव्य में प्रेरित करने के लिये दृढ़ता से काम लेना क्या निरपराध को सताना हुआ गुरुदेव?

गुरुदेव– एक लड़की या युवति, जिसे बूढ़ों की अपेक्षा घंटे दो घंटे अधिक नींद की जरूरत है, पर जो कामकाज के कारण सब से पीछे सोती है उसे पहर भर रात से जगादेना क्या निरपराध को सताना नहीं है? उसकी अंगुलियाँ झुलसादेना क्या क्रूरता नहीं है? जिस पति के लिये ही उसे अपना घर बार छोड़ना पड़ा उसके साथ बातचीत करने को भी मनाई होना क्या अन्याय नहीं है? हर एक नारी यदि बहू बनकर ऐसे अत्याचार अन्याय सहन करे और फिर सासू बनकर उन्हें वसूल करे तो इससे क्या मानवता का आनन्द मिलेगा? वह बहू बनकर हैवान बनेगी। सासू बनकर शैतान बनेगी। इन्सान कभी न बनेगी। आज की नारी को अगर कुछ इन्सानियत की सहूलियतें मिलरही है तो इसमें पश्चात्ताप की क्या बात है? जंगली युग चलागया इसकेलिये रोना क्या?

कौशल्या– पर क्या मर्यादा का कोई अर्थ नहीं है गुरुदेव?

गुरुदेव– आज तुम सास हो, इसलिये तुम्हें उस जंगलीपन में मर्यादा दिखाई देरही है पर जब बहू थीं तब ऐसे अत्याचार

होनेपर क्या तुम्हारी आंखों में आंसू न आये होंगे ? ऐसी घटनाओं पर विचार करते समय तुमने मन ही मन क्या यह न सोचा होगा कि नारी का जन्म ही पाप है।

कौशल्या ने कहा— यह तो आप ठीक कहते हैं गुरुदेव, आंसू भी आये थे, नारी जन्म को खूब कोसा था, और मौत को भी निमन्त्रण दिया था।

गुरुदेव— और भी सोचो ! मानलो तुम्हारी कोई लड़की होती। वह ससुराल जाती। और वहां से आकर ऐसे समाचार सुनाती कि उसकी उंगलियाँ झुलसाई गई आदि, तो इस समाचार से क्या तुम्हें यह सन्तोष होता कि अच्छा हुआ बेटी ! मर्यादा का पालन हुआ, तुझे कर्तव्य की प्रेरणा मिली। या लड़की की सासू को कच्चा चबाजाने के भाव मन मे उठे होते ?

कौशल्या ने हँसकर कहा— लड़की की सासू को कच्चा चबाजाने के भाव ही मन में उठे होते गुरुदेव ?

गुरुदेव— तब क्या तुम्हारी बहू किसी की लड़की नहीं है ? तब सोचो अनुशासन के नामपर यदि तुमसे उसे तकलीफ हो तो उसकी मां को कैसा लगेगा ? वह तुम्हारे बारे में क्या सोचेगी ?

कौशल्या— समझगई गुरुदेव ! पर यह समझमें नहीं आया कि बहुओं को यदि ऐसा स्वतंत्र छोड़ दिया जायगा तो वे कर्तव्य कैसे करेंगी, शिष्टाचार का पालन कैसे करेंगी ?

गुरुदेव— जितना काम उनकी शक्ति के भीतर है और जिसके बिना घर का काम चल नहीं सकता उसकी जिम्मेदारी उन्हीं पर सौंपदो। अपनी शक्ति और अवस्था के अनुरूप सहयोग तुम भी दो, सलाह भी दो, शिक्षण भी दो, वे आप अपनी जिम्मेदारी उठायँगी। इतना खयाल रक्खो कि बहू को बेटी समझकर व्यवहार करना है।

कौशल्या— पर बेटी से शिष्टाचार की कोई आशा नहीं की

जाती, क्या बहू को भी शिष्टाचार की वैसी ही छूट रहे ? क्या बहू और बेटी में कोई अन्तर नहीं है गुरुदेव !

गुरुदेव- अन्तर है। बेटी की गिनती बच्चों में होती है जिम्मेदार व्यक्तियों में उसकी गिनती नहीं होती। न उससे शिष्टाचार की आशा की जाती है न उसके प्रति भी शिष्टाचार की जरूरत समझी जाती है। पर बहू के बारे मे यह बात नहीं है। उससे शिष्टाचार की आशा रक्खी जाती है साथ ही उसके प्रति भी योग्य शिष्टाचार का पालन जरूरी होता है। पर शिष्टाचार के नामपर वृथाकष्ट न देना चाहिये, न ऐसे आनन्द छीनना चाहिये जिनसे कर्तव्य में बाधा न पड़ता हो। बहू यदि अपना काम पूरा कर लेती है फिर वह पति के साथ बात भी करती है, विनोद भी करती है, तो इसमें शिष्टाचार का भंग क्यों समझना चाहिये ? बल्कि पद के अनुरूप तुम्हें भी उस विनोद में भाग लेना चाहिये। जैसे लड़का तुम्हारे लाड प्यार का पात्र है वैसे ही बहू भी तुम्हारे लाड़ प्यार की पात्र है। लड़कों के समान बहुओ का जीवन भी खिलने दो। नारी जीवन पाप का फल है ऐसी छाप किसी नारी के मनपर न रहना चाहिये। क्या नारियों के बिना समाज रह सकता है ?

कौशल्या-यह तो असम्भव है गुरुदेव ! नारियों के बिना तो प्रलय हो जायगा।

गुरुदेव- तब उस प्रयलसे बचने का रास्ता यह है कि समाज में नारी-जीवन भी पुरुष-जीवन के समान सुखमय रहे। प्रकृति ने यदि नारी को कुछ कष्ट दिया भी हो तो उसका बदला सामाजिक सुविधा के रूपमें उसे दिया जाय। सुव्यवस्था के लिये यदि उसे कोई तप करना पड़े तो उस तपको दंड न मानकर उसके सुफल की व्यवस्था हो। नारी को घर छोड़ना पड़ता है यह उसका तप है। इस तपका दंड उसे न मिलना चाहिये किन्तु स्नेह के साथ आदर सन्मान के रूपमें उसे तप का फल मिलना चाहिये।

कौशल्या-पर नारी के गृहत्याग को तप कोन मानता है गुरुदेव ?

गुरुदेव— मनुष्य अभी सत्य का उपासक नहीं होपाया। इस-लिये इस बातको लेकर नारी को तपस्विनी कोई नहीं मानता। पर है वह तप ही। जिस कार्य से दूसरों का हित हो और अपने को कष्ट हो वही तो तप है। नारी को पीहर छोड़ते हुए काफी कष्ट होता है पर दूसरों का हित होता है इसलिये यह तप है ही। यह ठीक है कि यह सामान्य तप है, नारीमात्र का तप है। सामान्य तथा अनिवार्य होने से इसका मूल्य भले ही कम आंका जाय पर वह दंडनीय तथा अपमानास्पद तो न होना चाहिये। बहू को जेल का कष्ट नहीं किन्तु घर का स्नेह तथा मिहमान का आदर तो मिलना ही चाहिये।

कौशल्या— आप बिलकुल ठीक कहते है गुरुदेव! आपने तो मेरी दृष्टि ही बदल दी। मैं नारी होकर भी नारी के जिस गौरव को नहीं पहिचान सकी वह आप पुरुष होकर भी पहिचान गये। आप की इस उदारता का कहां तक बखान करूं गुरुदेव! सचमुच नारी को नरक में डालने वाली नारी ही है। भले ही समाज का विधान पुरुषों ने ही बनाया हो पर विधान के अमल मे क्रूरता भरने का काम नारियों ने ही किया है।

गुरुदेव— तुम्हारे कहने में कुछ सत्य तो जरूर है कौशल्या, फिर भी पूरा नहीं। नर नारी दो अलग अलग जातियाँ नहीं हैं, न उनमे जातीय पक्षपात है। नर और नारी मिलकर पूरा मनुष्य बनता है। इसलिये नर नर का पक्ष ले और नारी नारी का पक्ष ले, ऐसा पक्षपात न होता है, न होना चाहिये। नि पक्ष बनकर न्याय का ही विचार करना चाहिये। नारी के प्रति जो अन्याय होरहा है उसका परिमार्जन तुम्हें इसलिये नहीं करना चाहिये कि तुम नारी हो किन्तु इसलिये करना चहिये कि किसी को भी किसी के प्रति अन्याय न करना चाहिये। अभी तक जो नारी की दुर्दशा हुई है और कुछ अंश में अभी भी होरही है उसमे नर और नारी दोनों की भूल है। और दोनो को उसका परिमार्जन करना है।

कौशल्या— ठीक कहा गुरुदेव आपने ! परन्तु नारी के प्रति होने वाले अन्याय के परिमार्जन में पुरुष की अपेक्षा नारी पीछे है। आपकी दया से मैं यह पिछड़ापन दूर करना चाहती हूं। और अवश्य करूंगी। बहू को बेटी के रूप मे अपनाने से मैं भी धन्य होजाऊंगी और बहू भी धन्य होजायगी। प्रेम का शासन ही कुटुम्ब में सब से बड़ा शासन है।

सत्यभक्त
सत्याश्रम वर्धा

१५ मुंका ११९६० इ. सं.
२३–९–६०

१२ परोसने का विवेक

गुरुदेव— आज चेहरेपर उदासी क्यों छाई हुई है रमा

रमा— ऐसी कोई खास बात तो नहीं है गुरुदेव ! गृहस्थ जीवनमें छोटी बड़ी उलझनें आती ही रहती है, खासकर नारी के लिये तो दोनों तरफ से आफत है।

गुरुदेव ने मुसकराते हुए कहा—दोनों तरफ से क्या चारों तरफ से आफत है और नारी को क्या सभी को है। अन्तर इतना ही है कि अपनी अपनी आफत ही अपने को दिखाई देती है दूसरों की नहीं। और यह स्वाभाविक भी है।

रमा— आप ठीक कहते हैं गुरुदेव ! आदमी को अपनी ही आफत का दर्द होता है पर ये आफतें न जाने क्यों आजाती हैं ! बचाव की कितनी भी कोशिश करो मन में कितनी भी शुभ कामना रक्खो पर ये आफतें आ ही जाती हैं। और ऐसी छोटी छोटी बातों को लेकर आजाती है कि किसी से कहने में भी संकोच होता है।

गुरुदेव- खैर ! यहां तो कोई संकोच की बात नहीं है। और फिर तो यह अणुयुग है। महत् की अपेक्षा अणु को ही महत्व ज्यादा मिला हुआ है। जीवन में भी बड़ी समस्याओं की अपेक्षा छोटी समस्याओं से शान्ति अशान्ति का ज्यादा सम्बन्ध है। छोटी

छोटी बातें जितना बेचैन करती हैं उतनी बड़ी बड़ी बातें नहीं। महायुद्ध की अपेक्षा पड़ौसी से झगड़ा अधिक बेचैनी पैदा करता है।

रमा– बिलकुल ठीक कहते हैं गुरुदेव। मेरी बेचैनी भी बहुत छोटी सी बात को लेकर है। वह इतनी छोटी है कि उसकी आंच पड़ौस तक भी नहीं पहुँची है, घर के ही भीतर है। और उसमे भी इतनी छोटी कि सुनने पर उपेक्षणीय मालूम पड़े, पर मुझ सरीखी को इतनी चिन्ता से डालदे कि रातभर नींद न आवे। पर आप तो हमारे जीवनके वैद्य हैं। बीमारी छोटी हो या बड़ी आपके सामने रखने में ही हमारा कल्याण है। बात इतनी ही है कि कल शाम को भोजन परोसते समय मैंने एक रोटी ज्यादा परोस दी तो बोले तुम तो मुझे बीमार करके ही छोड़ोगी। इससे मुझे बहुत धक्का लगा। प्रेम के प्रदर्शन के बदले में ऐसी चोट मुझे सहन न हुई। कहा तो मैंने कुछ नहीं, पर रातभर मुझे नींद न आई और आंखें आंसुओ से भरी रहीं। अब बतलाइये गुरुदेव, मैं क्या करूं?

गुरुदेव– तो ज्यादा न परोसा कर!

रमा– पर उसमें भी गुजर नहीं। एक बार एक मेहमान को उनके मना करने पर मैंने न परोसा तो बाद में उलहना दिया कि तुमने मेहमान को भूखा रक्खा। आगे कुआ पीछे खाई सरीखी हालत है गुरुदेव!

गुरुदेव हँसे और बोले– रसोई बनाने की कला की अपेक्षा परोसने का विवेक बहुत कठिन है रमा! रसोई बनाने में तो हाथ को ही साधना पड़ता है पर परोसने में पूरा मनोवैज्ञानिक बनना पड़ता है।

रमा– पर हर एक नारी तो मनोविज्ञान पढ़ने के लिये कालेज में जा नहीं सकती, तब उसका काम कैसे चले?

गुरुदेव–ऐसे मनोविज्ञान की अधिष्ठात्री नारी ही है, उसे कालेज में जाने की जरूरत नहीं है, वह स्वयं कालेज है। अतीव

और मूक शिशुओं की मनोवृत्ति समझकर जो उनका पालन कर सकती है उसे बोलने चालने वाले वयस्क मनुष्यों की मनोवृत्ति समझना क्या कठिन है ?

रमा- पर मैं तो महामूढ़ हूं गुरुदेव। मे यह सब कुछ नहीं समझ सकती हूं। मेरे कालेज तो आप हैं। आप ही समझाइये।

गुरुदेव- समझने की बहुत बड़ी बात नहीं है रमा, सिर्फ यह समझना चाहिये कि कौनसा इनकार वास्तविक है और कौनसा शिष्टाचारी। वास्तविक इनकार हो तब तो कदापि न परोसना चाहिये और शिष्टाचारी इनकार हो तब इस तरह बात और व्यवहार करना चाहिये कि उसका इनकार ढीला पड़ जाय। ऐसी हालतमें परोसना चाहिये। कौनसी चीज उसे प्रिय है कौनसी अप्रिय इसका भी अन्दाज बांधना चाहिये। हर मनुष्य की प्रकृति भी अलग अलग होती है उसकी प्रकृति भी समझना चाहिये। उससे मालूम होगा कि इसे किस चीज की जरूरत है, कौनसी चीज ठीक मालूम हुई, अपेक्षाकृत कम मालूम हुई। इन सब बातो का पता हो तो परोसने के कामसे कोई दिक्कत न होगी।

रमा- पर मेरी तो समझ में नहीं आता कि इस तरह किसी के मनमें कैसे बैठा जासकता है ? मेरे लिये तो यह पूरा शास्त्र है। आपही इसका पूरा विधान समझाइये।

गुरुदेव- पूरा विधान तो अवसर के अनुसार तुझे ही बना लेना पड़ेगा। हाँ ! दिशनिर्देश के लिये कुछ बाते अवश्य बता देता हूं।

१- पति की तथा घर के अन्य आदमियों की प्रकृति का पता तो बहुत दिनो के सम्पर्क से लग ही जाता है। कुछ लोग ऐसे होते हैं कि मनवाकर पूरा भोजन करते है और कुछ ऐसे होते हैं कि उन्हें मनाने की कोई जरूरत नही है। जिसकी जैसी प्रकृति हो उसके साथ वैसा व्यवहार करना चाहिये।

२- साधारणतः घर के आदमियों में मनाने का रिवाज न डालना चाहिये। खासकर रोजमर्रा का साधारण भोजन तो मनाकर परोसने की चीज नही हैं। इसलिये साधारण भोजन के लिये मनाने

का रिवाज बन्द होना चाहिये।

३— कभी कभी साधारण भोजन भी घर में कम होता है और इसका पता लगने पर आदमी इच्छा रहते हुए भी मना करने लगता है। तो ऐसी हालतमें उसे मना मनाकर परोसना उचित है और यह बताना उपयोगी है कि भोजन की सामग्री कम नहीं है। या कम होने पर भी मुझे भूख नहीं है इसलिये जो कुछ है वह अधिक ही है। ऐसी अवस्था मे मनामनाकर परोसने में कोई बुराई न होगी।

४- किसी किसी की यह आदत होती है कि वह अप्रिय या कम स्वादिष्ट चीज पहिले खालेता है पीछे के लिये अच्छी चीज रखता है। ऐसी हालतमें परोसनेवाले को भ्रम होजाता है कि वह चीज उसे अधिक पसन्द है और वह चीज बार बार परोसने लगता है. इस तरह वह भोजन करनेवाले को परेशानी में डाल देना है। ऐसी अवस्था में वास्तविक कारण की खोज कर लेना चाहिये कि स्वादिष्ट होने के कारण वह चीज पहिले खाली है या पिंड छुड़ाने के लिये। वास्तविकता जानने का तरीका यह है कि जो चीज जल्दी खाली है उसे इनकार करने पर एक बार न परोसा जाय। कोई दूसरी चीज परोसी जाय। दूसरी चीज कीइनकारी पर या समाप्ति-पर फिर पहिली चीज परोसी जाय। उस समय इनकारी न हो या ढीली हो तब समझ लेना चाहिये कि पहिली चीज पसंद है। अन्यथा समझना चाहिये कि उससे पिंड छुड़ाया है।

५- अगर घर के किसी आदमी ने कभी यह कहा हो कि तुमने ज्यादा परोस दिया इसलिये पेट भारी होगया या तबियत ठीक नहीं है तब भविष्यमें उसे मनामनाकर खिलाने का काम न करना चाहिये। क्यों कि यह प्यार का अत्याचार हो जाता है। और अत्याचार प्यार की अवहेलना कराने लगता है। और [illegible] कुछ कठोर शब्दों में या कठोर स्वर में प्रगट होने लगता है।

रमा- यह ठीक कहा गुरुदेव आपने। कल जब उनने कहा

था कि तुम मुझे बीमार करके छोड़ोगी उसके पहिले दो तीन बार अधिक परोसने से पेट भारी होजाने की बात उनने कही थी। पर मैंने ध्यान नहीं दिया तब कल उनने ऐसी कठोर बात कही।

गुरुदेव– ऐसा ही होता है। जब हम सरल संकेतों पर ध्यान नहीं देते तब सूचनाएँ काफी कठोर होजाया करती हैं। मानवता का तकाजा है कि जीवन के हर क्षेत्र में सरल संकेतों की उपेक्षा न की जाय। खैर! अब तुम बात समझगई हो। मैंने जो सूचनाएँ दी हैं वे काफी हैं। फिर भी दो एक मामूली सूचनाएँ और हैं।

६– घर के आदमियों के भोजन के परिमाण का ध्यान रखना चाहिये। और साधारण परिमाण से अधिक तभी परोसना चाहिये जब वे स्वयं मांगें या साधारण पूछने पर स्वीकार करें।

७— बच्चे भूखे न रहें इसका अधिक ध्यान रखने की जरूरत नहीं है। वे स्वादलोलुपता के कारण अधिक न खा जायँ इसी का ध्यान रखना चाहिये। साधारणतः घर के बच्चों को सताना न चाहिये।

८– यह समझ रखना चाहिये कि साधारणः कम खाने से निर्बलता नहीं आती अधिक खाने से निर्बलता आती है। क्योंकि अधिक खुराक पच नहीं पाती इसलिये या तो वह कच्ची ही निकल जाती है या बीमारी को जड़ बनकर बैठजाती है। हां! घर में इतनी कंगाली हो कि भरपेट खाना ही किसी को नसीब न होता हो वहां भूखे रहने से निर्बलता आसकती है। पर जिन घरों में खाने की इसप्रकार तंगी नहीं है वहां बीमारी की जड़ अतिभोजन ही बनता है अल्प भोजन नहीं।

बस काफी हैं। इन सूचनाओं का ध्यान रखने से ऐसी नौबत न आयगी कि तुम्हें ऐसा कठोर उलहना सहना पड़े या मेह-मान को भूखा रखना पड़े।

रमा– बिलकुल ठीक है गुरुदेव। पर ऐसी ऐसी छोटी

छोटी बातों के लिये आपको परेशान करना पड़ता है इससे बड़ा खेद होता है। और स्त्रियोचित मामूली कार्यों की शिक्षा एक पुरुषसे लेना पड़ती है इसकी लज्जा भी आती है। फिर रमा मुकराते हुए बोली- ऐसा मालूम होता है कि पहिले जन्ममे आप कोई महामहिला थे इसलिये महिलाओं के विषय में इतनी जानकारी आपको है।

गुरुदेव ने हँसकर कहा- पिछले जन्म में ही क्यों, तू इसी जन्ममें मुझे एक अशमें महामहिला मानसकर्ता हैं। क्योंकि सत्येश्वर गीता में लिखा है-

-योगी उभय लिंग अवतारी।
किसी अंश में नर बनता है किसी अंश में नारी ॥

रमा हँसी और प्रणाम करके चलीगई।

१५ चिंगा ११९६० इ. स. सत्यभक्त

१३ दुहरी उलझनें

सत्यप्रसाद एक खातेपीते मध्यम श्रेणी के सद्गृहस्थ थे। तीन आदमियों का छोटासा कुटुम्ब था। वे, उसकी पत्नी दयावती, और पुत्र रामप्रसाद। दुर्भाग्य से दो वर्ष पहिले उनकी पत्नी का देहान्त होगया। उस समय उनकी उम्र अड़तीस वर्ष की थी। उन्हें विवाह की जरूरत भी थी और उनका विवाह हो भी सकता था। परन्तु यह सोचकर उनने विवाह न किया कि घर में अठरह वर्ष का पुत्र है ही, उसकी शादी कर दी जायगी, पुत्रवधू आजायगी, रोटी पानी की व्यवस्था होजायगी। अब विवाह करके लड़के के ऊपर विमाता का कष्ट क्यों लादा जाय? उनने ऐसा ही किया। छह माह बाद पुत्र की शादी कर दी। पुत्रवधू सुशीला वास्तव में सुशीला थी। वह पिता की तरह सत्यप्रसाद की सेवा करती थी। सत्यप्रसाद का घर आनन्द से चलने लगा। इतने में पुत्रवधू गर्भवती हुई। और उसको पुत्र हुआ। अब सत्यप्रसाद के आनन्द का पार न रहा। अनुरागी सेवाभावी सदाचारी कमाऊ

पुत्र, सुशील पुत्रवधू, और नाती के कारण उन्हें घर स्वर्ग से भी अच्छा मालूम होने लगा। पर दैव से उनका यह सुखी संसार न देखा गया। नाती मुश्किल से तीन माह का ही होपाया था कि उनके पुत्र रामप्रसाद का देहान्त होगया। सत्यप्रसाद के सिर पर दुख का पहाड़ ही टूट पड़ा। अगर गुरुदेव का सहारा न होता तो या तो सत्यप्रसाद पागल होजाते या शोक के कारण मर जाते। प्रारम्भ में गुरुदेव कई दिन तक सत्यप्रसाद के घर गये। बाद में सत्यप्रसाद हर दिन गुरुदेव के दर्शन को आते रहे। इस तरह छह माह कट गये।

आज जब सत्यप्रसाद आये तब विशेष चिन्ता की मुद्रा मे। उनने गुरुदेव को प्रणाम करके कहा– गुरुदेव आपकी कृपा से ये शोक के दिन तो बीत गये। अगर आपके चरणों का सहारा न होता तो आज मैं जीता न होता!

गुरुदेव ने गहरीसी सांस लेकर कहा–काल सब संकटों की दवा है।

सत्यप्रसाद ने कहा– सो तो है गुरुदेव! पर दवा तो तब काम आती जब रोगी बचता। यदि रोगी ही चला जाता तो दवा क्या काम आती! आपने रोगीको बचालिया तो कालने दवाका काम भी किया।

गुरुदेव—सब सत्येश्वर की कृपा है।

सत्यप्रसाद– सो तो है ही। यह उन्हीं की तो कृपा है जो आपकी कृपा के रूप में मुझे मिली है। पर आपने जो यह मुझे जीवनदान दिया है उसे सम्हालूं कैसे? पुत्रवधू कहने को एक बच्चे की मां है, पर है अठारह वर्ष की एक लड़की ही। इतनी लम्बी जिन्दगी वह वैधव्य में कैसे काटेगी? उस दिन आपने उसकी चूडियाँ नहीं फोड़ने दीं। कपडों की कोई पाबन्दी भी आपने नहीं लगाने दी। आपने आदेश दिया कि जैसे कपड़े वह पहिले पहिनती

थी वैसे ही पहिना करे। परन्तु उसमें कपड़े पहिनने की रुचि ही नहीं रही। चूड़ियाँ ज्यों ज्यों फूटती गई त्यों त्यों हाथ खाली होता गया, उसने दूसरी चूड़ियाँ नहीं पहिनीं। ललाट में कुंकू भी वह नहीं लगती। पर इससे बुढ़ापा तो नहीं आजाता। उसकी उम्र तो अभी सिर्फ अठारह वर्ष की है।

गुरुदेव- यह बिलकुल ठीक है, जिन्दगी भर के लिये उस पर वैधव्य नहीं लादा जासकता, इसलिये आज नहीं तो कल उसकी शादी करना ही है। सत्यसमाज का तो विधान ही यह है कि यदि पुत्रवधू विधवा होजाय तो श्वसुर का कर्तव्य है कि वह उसे पुत्री के समान समझकर अपनी तरफ से उसकी शादी कर दे। पर सवाल तो यह है कि तुम्हारा क्या होगा? तुम तो चालीस वर्ष की उम्र में ही बूढ़े होगये हो। इन छह महीनों में मानों बुढ़ापा तुम पर टूट पड़ा है।

सत्यप्रसाद— बुढ़ापा टूट न पड़ता तो क्या होता गुरुदेव! मौत के साथ लड़ने में ही जवानी घायल होगई।

गुरुदेव—घायल ही हुई है। उसे भी बचाना है। किसी न किसी तरह जवानी को भी वापिस बुलाना है। और उजड़े हुए स्वर्ग को भी बसाना है।

सत्यप्रसाद- मेरी तो समझ मे नहीं आता कि यह सब कैसे होगा? पुत्रवधू की शादी कर दूं तो मेरे लिये सहारा क्या रहे यह समस्या तो है ही, पर पुत्रवधू को शादी की भी समस्या है। एक तो वह विधवा है, दूसरे एक बच्चे की मां। दूसरे के बच्चे को अपनाने के लिये कौन तैयार होगा? यदि बच्चे को मैं अपने पास रखलूं तो मुझसे उसका पालन कैसे होगा और सुशीला भी अपना बच्चा कैसे छोड़ना चाहेगी? सभी तरफ दुहरी उलझनें हैं गुरुदेव!

गुरुदेव- हैं। पर संसार में जितनी बीमारियाँ हैं उससे अधिक उसकी दवाएँ भी हैं। सब से बड़ी बाधा मनुष्य के कुसंस्कार

की, संकुचितभावना की, क्षुद्रता की, और अविवेक की है। अन्यथा छोटे से बच्चे वाली युवति के साथ शादी करने में क्या आपत्ति है? कुमारी के साथ शादी करने में बच्चे के लिये काफी बाट देखना पडती है, काफी खर्च करना पड़ता है, नव माह तक पत्नी की परेशानी और प्रसूति के कष्ट आदि की चिन्ता करना पड़ती है। पर सुशीला के साथ जो शादी करेगा उसे इन सब चिन्ताओं से और खर्चों से बचत होगी। पर यह प्रगट हित या लाभ लोगों को नहीं दिखाई देता। एक बछड़ी की अपेक्षा बछडेवाली गाय का मूल्य अधिक होता है पर नारी के विषय में यह लाभालाभ-विवेकदृष्टि मनुष्य का काम ही नहीं करती, इसका कारण सिर्फ यही है कि उसके दिल में मेरे तेरे की संकुचितता काम कर रही है।

सत्यप्रसाद— बहुत पुरानी बीमारी है गुरुदेव! और बीमारी भी ऐसी, जिसे लोग बीमारी नहीं समझते। उसमें गौरव का अनुभव करते हैं। आप सरीखे गुरुदेव ही इसे हटा सकते हैं।

गुरुदेव- अकेला गुरुदेव क्या करेगा? वह नया विचार दे सकता है, विचारों के समर्थन में तर्क दे सकता है, विरोध के सहने के लिये हिम्मत दे सकता है पर उन विचारों को बुलन्द शब्दों में दुनिया में फैलाना और उसे अमल में लाने का काम सब का है।

सत्यप्रसाद- असली और कठिन काम तो वही है गुरुदेव, जो आपको करना है। हम लोग तो रेल के डब्बे हैं, जिधर आप खींचेंगे चले जायेंगे। भले ही कोई यह समझे कि असली चीज तो डब्बे हैं क्योंकि यात्री उसी में बैठते हैं। पर जानने वाले जानते हैं कि सारी करामात एंजिन की है। वह न हो तो डब्बों का कोई अर्थ नहीं रह जाता। आपके मुंह पर आपकी स्तुति क्या करूं? इस समय तो मैं यही कहता हूं कि आप जो हुक्म करें वही मैं करने को तैयार हूं।

गुरुदेव- मैं हुक्म किसी को देता नहीं, सलाह देता हूं। अगर उस सलाह में किसी को अपना कल्याण मालूम पड़े तो उसे माने; कल्याण न मालूम पड़े तो न माने।

सत्यप्रसाद— आपकी इस निरपेक्षता का मुझे अनुभव है गुरुदेव। आप अपनी समझ से सलाह दीजिये। मैं अपनी समझ से हुक्म की तरह उसे मानूंगा।

गुरुदेव— ठीक है। तुम एक ऐसा लड़का ढूढ़ो जो सुशीला के साथ शादी करने के योग्य हो पर हो अकेला। वह सुशीला का पति बनेगा और तुम्हारा पुत्र बनेगा। तुम्हारा उजड़ा हुआ घर फिर बस जायगा।

सत्यप्रसाद— आपकी योजना तो बहुत अच्छी है गुरुदेव, पर इसके साथ एक समस्या और है कि सुशीला शादी के लिये तैयार होगी या नहीं।

गुरुदेव— इस देश का जो वातावरण है और नारी की जो सहज मनोवृत्ति है उसे देखते हुए सुशीला इनकार ही करेगी। खैर! सुशीला तो एक विधवा है और बच्चेवाली है, पर तुम किसी कुमारी से पूछो तो वह भी शादी के लिये इनकार करेगी। पर उनके इनकार में से स्वीकारता पढ़ी जासकती है। सुशीला के इनकार को भी इसी तरह पढ़ना होगा।

सत्यप्रसाद— तो आप ही पढ़िये गुरुदेव! उसे मैं आपके पास भेज देता हूं।

गुरुदेव— जरूरत होने पर मेरे पास भी भेज सकते हो, पर अभी जरूरत नहीं है। अभी तो तुम उससे इस बात का जिक्र करो। उस पर उसका क्या कहना है वह उसी के शब्दों में ज्यों का त्यों मुझे सुनाओ! उसका उत्तर पढ़कर उसे बुलाने की जरूरत मालूम होगी तो बुलाऊंगा।

सत्यप्रसाद— बहुत अच्छा!

(२)

दूसरे दिन सत्यप्रसाद ने आकर कहा— अपनी तरफ से विवाह की बात करने की हिम्मत तो नहीं पड़ी गुरुदेव! मैंने तो

यही कहा कि गुरुदेव ने तेरा विवाह करने की मुझे आज्ञा दी है सुशीला !

गुरुदेव– तब सुशीला ने क्या कहा ?

सत्यप्रसाद– बात सुनते ही वह रोने लगी। मेरे भी आंसू बहने लगे। थोड़ी देर जब दोनो रोचुके तब उसने कहा–गुरुदेव ने मुझमें ऐसी क्या कुचाल देखी कि ऐसा हुक्म दिया। मैने कहा–कुचाल का सवाल नहीं है सुशीला ! तेरी उम्र अभी छोटी है, तू शादी लायक है इसलिये गुरुदेव ने यह हुक्म दिया है।

गुरुदेव– ठीक कहा तुमने। मां बाप लड़की की शादी लड़की कुचाल देखकर थोड़े ही करते हैं ! कर्तव्य समझकर करते हैं।

सत्यप्रसाद– लड़की का उदाहरण तो मुझे न सूझा पर उम्र की बात मैने कहदी।

गुरुदेव— तब उसने क्या कहा ?

सत्यप्रसाद–कहा कि जो मेरे भाग्यमें बदा था सो होगया। अब मैं पिता मानकर आपको सेवा करूंगी और इस बच्चे को पालूंगी। मै मौत के विना यह घर न छोडूंगी।

गुरुदेव ठीक समाचार लाये हो सत्यप्रसाद ! अब तुम लड़के की तलाश करो। सुशीला तो विवाह के लिये तैयार है।

सत्यप्रसाद– पर सुशीला ने तो इनकार किया है गुरुदेव !

गुरुदेव— पर उसने विवाह से इनकार नहीं किया है। श्वसुर की सेवा छोड़ने से तथा बच्चे को छोड़ने से इनकार किया है। पर जिस तरह हम उसकी शादी करना चाहते है उससे न उसका श्वसुर छूटता है न बेटा। ऐसी हालत में यह उसके विवाह को स्वीकारता ही समझना चाहिये।

सत्यप्रसाद— उसके शब्दों को आपने बहुत ठीक पढ़ा गुरुदेव !

गुरुदेव — बस, तुम लड़के की तलाश और करो।

सत्यप्रसाद— 'जो आज्ञा' कहकर और प्रणाम करके चले

गये ।

(३)

आज एक माह बाद सत्यप्रसाद ने आकर एक लड़के की बात की । लड़का शिक्षित है, स्वस्थ है, साधारणतः सुन्दर भी है । और गरीब है । पर एक उलझन है कि वह बिलकुल अकेला नहीं है । उसकी विधवा मां है । मां न तो लड़के को छोड़ सकती है न उसके सामने ऐसा निर्दय प्रस्ताव रखने की कोई हिम्मत कर सकता है । वह तो लड़के और बहू के साथ ही अपनी जिन्दगी काटना चाहती है । अब यदि लड़के को अपने घर लाया जाय तो उसकी मां का क्या हो ? और सुशीला को उसके यहां भेजदिया जाय तो मेरा क्या हो ? फिर दुहरी उलझन है गुरुदेव ?

गुरुदेव आंखे बन्द किये हुए थोड़ी देर सोचते रहे । फिर उद्गार के समान उनके मुँह से शब्द निकले-सत्येश्वर बड़े दयालु हैं सत्यप्रसाद, वे दुहरी उलझनों में से ऐसी सुलझन निकाल देते हैं जिसकी मनुष्य पहिले से कल्पना भी नहीं कर सकता ।

जीवन की उलझन में सुलझन करना तेरा काम । धन्य हो ! सत्येश्वर, धन्य हो ! सत्यप्रसाद यह सम्बन्ध पक्का कर लो ! पुत्र-बधू घर में रहेगी, पुत्र की मां घर में रहेगी, तुम्हें पत्नी मिलेगी और पुत्र मिलेगा । पुत्र को पिता मिलेगा पत्नी को पति मिलेगा सासू मिलेगी । कैसा सुन्दर समन्वय है । सत्येश्वर ! कैसी असीम दया है तेरी, और कैसे अद्भुत रास्तों से वह आती है ।

यह कहते कहते गुरुदेव की आंखें भर आईं । उन्हें गुरुदेव ने चादर से पोंछा ।

गुरुदेव की बात सुनकर तो सत्यप्रसाद हक्काबक्का से रहगये । बोले-दुनिया इसे सहन करेगी गुरुदेव ?

गुरुदेव—दुनिया की चिन्ता न करो सत्यप्रसाद, सत्येश्वर इसे सहन करेंगे ।

सत्यप्रसाद— पर दुनिया तो घोर निन्दा ही करेगी।

गुरुदेव— करेगी। पर उसकी वह निन्दा भ्रमपूर्ण होगी, कुसंस्कारों के कारण होगी इसलिये उसकी चिन्ता न करना चाहिये। दुनिया को यह भ्रम है कि दुःख ही धर्म है। इसलिये हजारों वर्ष से वह धर्म के नाम पर निरर्थक कष्ट उठाती चली आरही है। निरर्थक कष्टों को वह तप कहती चली आरही है। उनके गीत गाती आरही है। पर दुनिया की इस हैवानियत की चिन्ता न करना चाहिये जिससे उसकी हैवानियत हटे। इस योजना से तुम्हारा, तुम्हारी पुत्रवधू का, उसके पति का, और उसके पति की मां का, चारों का जीवन सुखी होता है। सब का अकेलापन मिटता है। नरक की जगह स्वर्ग का निर्माण होता है। और इससे किसी के साथ अन्याय नहीं होता। तब इसमें अधर्म कहां से आगया? जिससे निन्दा की जाय।

सत्यप्रसाद— पर दुनिया इस तत्व को समझती कहां है?

गुरुदेव— नहीं समझती। इसके बदले वह गुप्त व्यभिचार को समझती है और भ्रूण हत्याओं को समझती है। इस समझमें उसकी हैवानियत और शैतानियत दोनो हैं। हैवानियत तो उसकी परम्परागत मूढ़ता है और शैतानियत है उसकी ईर्ष्या। दूसरों को दुःखी देखकर ही उसे सन्तोष होता है और दूसरों को सुखी देखकर उसका हृदय ईर्ष्या से जलने लगता है। तुम्हें दुनिया की इस हैवानियत और शैतानियत का शिकार नहीं होना है।

सत्यप्रसाद— नहीं होना है गुरुदेव। जब आप के चरणों का सहारा है तो मैं किसी की हैवानियत शैतानियत का शिकार न हो पाऊंगा। पर इसके लिये क्या लड़के की मां तैयार होजायगी?

गुरुदेव— होजायगी, क्यों न होजायगी? जब उसका लड़का छूटता नहीं है, उसे पुत्रवधू भी मिलती है और खोया हुआ सौभाग्य भी वापिस मिलता है, तब वह तैयार क्यों न होगी? पहिले वह जरूर इनकार करेगी पर वह शिष्टाचारी इनकार होगा। ज्यों ही

उसे मालूम होगा कि यह सब मजाक नहीं है, इसमें वास्तविकता है, त्यों ही मौन रूपमें उसकी स्वीकृति मिल जायगी।

सत्यप्रसाद ने गुरुदेव के चरणों पर सिर रखकर कहा— आपकी कृपा कितनी असीम है गुरुदेव। आपने तरह तरहकी दुहरी उलझनें दूर करदीं। सचमुच आपका अवतार इस दुनियाको स्वर्ग बनानेके लियेही हुआ है।

गुरुदेव— दुनिया में स्वर्ग की सामग्री तो भरीपड़ी है सत्यप्रसाद! पर दुनिया ने अपनी हैवानियत और शैतानियत के कारण ही इस दुनिया को नरक बना रखा है, पर हमें स्वर्ग का कार्यक्रम पेश करके और उसपर चलकर दुनिया का पथ प्रदर्शन करना है।

शेशु दो ११०६०   सत्यभक्त (चांदा प्रवासमें)
३१-१२-६०   सत्याश्रम वर्धा

१४ पड़ौसी का असहयोग

कान्तिलाल काफी उदास चेहरे से गुरुदेव के पास आया। बोला— आप सच कहते हैं गुरुदेव, कि दुनियामें हर आदमी अकेला है।

गुरुदेव— कहता तो हूं, पर यह नहीं कहता कि उसे अकेला रहना चाहिये। उसका अकेलापन उसके अज्ञान और असंयम का परिणाम है। उसे यह अकेलापन दूर करना चाहिये।

कान्तिलाल—बहुत मुश्किल है गुरुदेव! कोई किसी के काम नहीं आता, सब अपने अपने मतलब के हैं। चार दिन का मिठास सब बताते हैं फिर अपनी खटास पर आजाते हैं। देखिये न, मेरे पड़ौस में जो सत्यप्रसादजी रहते हैं, कैसे बदल गये। पहिले जरूरत होने पर उनके यहां से बर्तन भांडे मिल जाते थे, कभी दस पांच रुपये उधार की जरूरत होती थी तो वह भी मिल जाते थे, कभी किसी कारण दाल चावल कम पड़जाता था तो तुरत उनके यहां से आजाता था पर अब पूरा असहयोग है। कभी किसी भी चीज की जरूरत हो तो घर में होने पर भी साफ इनकार हो जाता है। यहां

तक कि एक बार उनके घर में शाक नहीं आपाई थी और वे बाहर गये थे, तो मैंने थोड़े आलू भेज दिये लेकिन उनकी पत्नीने न लिये। अब कहिये पड़ौस में रहनेका क्या अर्थ ? साथ साथ रहते हुए भी सब अकेले कहलाये।

गुरुदेव गंभीर होगये। बोले– ऐसा असहयोग होना न चाहिये पर ऐसे असहयोग की जिम्मेदारी तुम पर है या सत्यप्रसाद पर इसका निर्णय नहीं हो पारहा है।

कान्तिलाल– मैं तो सदा सहयोग के लिये साथ बढ़ाये रहता हूं गुरुदेव !

गुरुदेव– केवल हाथ बढ़ाने से काम नहीं चलता उसके अनुरूप व्यवहार रखना पड़ता है। सत्यप्रसाद जी के यहां से जब तुम बर्तन लाते थे तब क्या समय पर अपने आप पहुँचा देते थे ?

कान्तिलाल– इस का तो मैंने कभी विचार नहीं किया। सोचता था यहां रहा तो क्या ? वहां रहा तो क्या ? जब उन्हें जरूरत होगी तब वे मांग लेंगे

गुरुदेव– और दो चार माह उन्हें जरूरत न पड़े और जब जरूरत पड़े तब उन्हें खयाल न रहे कि कब किसे दिया था और वह कहां गया तो वह तुम्हारे पास ही सदा के लिये रहजाय।

कान्तिलाल– पर ऐसा मौका वे आने ही न देते थे। दूसरे दिन ही तकाजा आजाता था। दो चार दिन में दो चार बार तकाजा आही जाता था और इसके बाद उनके यहां से कोई आकर वह चीज ले ही जाता था।

गुरुदेव– बर्तन भांडे क्या तुम ठीक साफ करके देते थे ?

कान्तिलाल– ठीक साफ करने का मौका ही कहां मिलता था ? उस समय तो हम धोकर ही रख देते थे सोचते थे जब देनें लगेंगे तब अच्छी तरह साफ करदेंगे। पर उनके यहां से तो कोई घोडे पर चढ़ासा आता था और लेजाता था, ठीक साफ करने का

मौका ही न मिलता था।

गुरुदेव कुछ अधिक गम्भीर होगये। 'हुं' करके कुछ सोचते रहे, फिर बोले– रुपया भी क्या तुम उधार लेते थे ?

कान्तिलाल– शुरु में ही दो चार बार लिया था, अब तो वे देते ही नहीं।

गुरुदेव– क्या रुपया समय पर चुका दिया था ?

कान्तिलाल– समय पर भले ही न चुकाया हो पर उनका एक पैसा भी नही रक्खा ?

गुरुदेव– ब्याज भी दिया ?

कान्तिलाल– ऐसे आपसी लेन देन में ब्याज कौन देता है गुरुदेव !

गुरुदेव– क्या रुपया पूरा का पूरा एकमुश्त चुकाते थे ?

कान्तिलाल– एक मुश्त चुकाने का वे अवसर ही कहा देते थे ? एक महीना भी नहीं होता था कि उनका तकाजा होने लगता था। बार बार के तकाजों से तंग होकर उन्हें थोड़ा थोड़ा देना पड़ता था।

गुरुदेव— क्या तुम्हारा वायदा दो चार माह का होता था और वे जल्दी मगाने लगते थे ?

कान्तिलाल– वायदा की बात छोड़िये गुरुदेव, हाथ उधार लेनेवाला तो सदा दो चार दिन का ही वायदा करता है।, पर उनका अर्थ दो चार दिन का नहीं होता यही है कि यथावकाश देदेंगे।

गुरुदेव फिर गम्भीर होगये। उन्हें मौन देखकर कान्ति-लालने पूछा– मेरी क्या गलती है गुरुदेव !

गुरुदेव ने कुछ भारी मन से कहा– गलती क्या बताऊं ? तुम्हारे भीतर चोर भी बैठा है, ठग भी बैठा है, क्रूर भी बैठा है, और कृतघ्न भी बैठा है, इस प्रकार शैतान अपनी चारों अदाओं के

साथ तुम्हारे भीतर नंगा नाच कर रहा है।

कान्तिलाल का मुँह फीका पड़गया। आंखें नीची होगईं। बड़ी मुश्किल से उसने अपने को सम्हालते हुए कहा–मुझे शैतान की चारों अदाएँ कुछ साफ साफ समझाइये गुरुदेव !

गुरुदेव– जो आदमी किसीसे कोई चीज उधार लेकर बिना मांगे नहीं देता वह पूरा चोर है। वह सोचता है कि अगर ये भूल जायँ तो चीज पच जाय। साधारण चोर नजर चुकाकर चोरी करता है यह स्मृति चुकाकर चोरी करता है। चोरी की वृत्ति में कोई अन्तर नहीं है। ठग वह इसलिये है कि मांगते समय झूठे वायदे करता है मीठी बात करता है, और बेतकल्लुफी के नामपर उसका व्याज ठग लेता है। क्रूर इसलिये है कि वह उपकारी दाता को बार बार तकाजा करने के लिये विवश करता है, अपने घर दौड़ाता है, अपनी चीज लेजाने का श्रम कराता है, चीज बिगाड़कर देने से साफ करने का श्रम लादता है साथ ही उसपर मुफ्त की चिन्ताएँ लादता है, उसे खूब दुःखी करता है। कृतघ्न इसलिये कि वह इतना लाभ उठाकर भी उसका उपकार नहीं मानता किन्तु उपकारी का निन्दक बनजाता है। यही है शैतान की चारों अदाएँ जो तुम्हारे भीतर दिखाई दे रही हैं।

कान्तिलाल चुप रहा। थोड़ी देर की चुप्पी के बाद गुरुदेव ने कहा— क्यों कान्तिलाल, तुमने कभी लोगों को अपनी चीजें उधार दी हैं ? उधार देने पर कभी तुम्हें परेशानी हुई है, तो उसके बाद तुमने कैसा व्यवहार किया है ?

कान्तिलाल चुपरहा। पर उसकी आंखों से आंसू बहने लगे। फिर थोड़ी देर में रुंधे गले से कहा– मैंने भी पहिले एक दो बार किसी दूसरे को उधार चीजें दी हैं, पर ऐसा ही अनुभव आने से मैंने ऐसे लोगों को कोई भी चीज देना बन्द कर दिया है।

गुरुदेव– अच्छा होता इस अनुभव से तुम लेना भी बन्द कर देते। अथवा सत्यप्रसाद के साथ व्यवहार करते समय उनको

ऐसा कड़ुआ अनुभव न कराते। इस कड़ुए अनुभव के कारण उन्हें तुमसे सम्बन्ध तोड़ना पड़ा और इसलिये कभी तुम्हारी चीज़ नहीं ली। क्योंकि वे एकबार भी तुमसे कोई चीज लेलेते तो तुम दस बार लेकर उनकी नाक में दम कर देते। इसलिये उन्हें अपनी उदारता सहयोगशीलता को रोकना पड़ा। इसकी जिम्मेदारी तुम पर ही है।

कान्तिलाल– क्या कहूं गुरुदेव ! मेरे भीतर शैतान बैठा था।

गुरुदेव— तो अब चला जायगा। जब तक तुमने उसे देखा नहीं था, समझा नहीं था, तभी तक वह बैठा था। जब तुम उसे देख सके समझ सके तब वह रह नहीं सकता। दुनिया में न उपकार दुर्लभ है न सहयोग दुर्लभ है। सच पूछा जाय तो मनुष्य उपकार करने और सहयोग करने के लिये सदा तैयार है पर इन सद्वृत्तियों को सुलादिया है, बेहोश कर दिया है, या बांधदिया है, उन लोगों ने, जो उपकार के बदले में कृतघ्नता बताते हैं सहयोग का दुरुपयोग करते हैं अपनी ठगी चोरी आदि का परिचय देते हैं। तुम अगर इस शैतान से पिंड छुडालो, वचन के और वायदा के पक्के बनजाओ, विनिमय में ईमानदारी रक्खो, प्रत्युपकार न कर सको तो कृतज्ञता प्रगट करो तब तुम अकेले न रह जाओगे। हर पड़ौसी और परिचित तुम्हारा बन्धु बनजायगा, तुम्हारा अकेलापन निकल जायगा।

कान्तिलाल– जरूर निकल जायगा गुरुदेव ! आपकी कृपा से जरूर निकल जायगा। मेरी शैतानियत निकल गई यह आपकी कृपा का ही फल है।

यह कहकर गुरुदेव को नमस्कार कर कान्तिलाल चलागया। और जाते जाते कह गया कि मैं अभी अभी सत्यप्रसाद जी के यहां जाता हूं और उनसे क्षमा मांगलेता हूं। गुरुदेव को बड़ा सन्तोष हुआ।

१७ जिन्नी ११९६१ इ. सं. — सत्भक्त

१४–३–६१ — सत्याश्रम वर्धा

१५ प्यार की असफलता

उस दिन गुरुदेव के यहां एक अपरिचित सुन्दरी तरुणी आई। देखते ही गुरुदेव ने कहा—आओ बेटी, बैठो! तुम को वो कभी देखा नहीं है, तुम कहां को रहनेवाली हो ?

तरुणी ने कहा—रहती तो बम्बई में हूं। मैं सिनेमा की एक अभिनेत्री हूं। इस तरफ आई थी। सुना कि जीवनकी उलझनों को सुलझाने के लिये आपके उपदेश बडे उपयोगी होते हैं इसलिये आपकी शरण में चली आई।

गुरुदेव— हां बेटी, इस दृष्टि से लोग आते तो रहते हैं मेरे पास। मै निमित्त बन जाता हूं। असली बात तो यह है कि जीवन की उलझनों का सुलझाव होता है उन्हीं के पास, पर उन्हें वह दिखता नहीं है, मैं दिखा देताहूं।

तरुणी— यही तो बड़ा कार्य है गुरुदेव! इसीकेलिये तो मैं आई हूं। मेरा जीवन प्यार की असफलता की कहानी है। प्यार ने मुझे धोखा दिया है। और इसलिये मै बहुत दु खी हूं।

गुरुदेव— प्यार तो धोखे की चीज नहीं है बेटी! पर जवानी में जो सौन्दर्य आदि का कामुकतापूर्ण आकर्षण होता है उसे प्यार समझने का भ्रम हो जाता है, उसी से मनुष्य धोखा खाता है और समझता है कि प्यार ने धोखा दिया।

तरुणी— तो प्यार क्या है गुरुदेव!

गुरुदेव— दूसरे को प्रसन्न और सुखी रखने की स्थायी भावना, दूसरे को अपने से अभिन्न अनुभव करने का एक भाव।

तरुणी— तो क्या सौन्दर्य के कारण एक दूसरे के प्रति जो आकर्षण होता है उसमें प्यार नहीं रहता ?

गुरुदेव— रह सकता है, पर रहता ही है यह नहीं कह सकते, ज्यादातर नहीं रहता है। प्रारम्भ में सौन्दर्य के प्रति आक-

र्षण होजाय और उस निमित्त से अभिन्नता का स्थायीभाव पैदा होजाय तब तो प्यार आजाता है, पर यदि वह न आये तब उसे वह मोह आसक्ति लोलुपता समझना चाहिये। आसक्ति एक सौन्दर्य से ऊबकर खत्म होजाती है वह नया सौन्दर्य चाहती है या उससे भी अच्छा सौन्दर्य चाहती है।

तरुणी– पर दोनों का अन्तर समझा कैसे जाय गुरुदेव !

गुरुदेव– समझने में कुछ कठिनाई तो है पर बहुत कठिनाई नहीं। जो आकर्षण भँवरे की तरह हर फूल पर मडराने लगता है, वह प्यार नहीं लोलुपता है। कहां प्यार है और कहां सिर्फ शिष्टाचार है यह अन्तर समझने में देर नहीं लगती।

तरुणी– देर तो नहीं लगती फिर भी लोग धोखा देने ही हैं। स्थायी भाव है कि नहीं यह समझमें नहीं आता। और जब समझ में आता है तब सब कुछ लुट चुका होता है।

गुरुदेव— नारी की शरीर रचना ऐसी है कि उसे इस विषय में फूंक फूंक कर कदम रखना चाहिये। विवाह के बिना उसे सब कुछ लुटाने की परिस्थिति में न डालना चाहिये। पुरुष कितने भी संकल्प करे, इस विषय में उसका कोई मूल्य नहीं। जब तक विवाह न होजाय तब तक ऐसा एकान्त न आने देना चाहिये जिसमें सब कुछ लुटने की थोड़ी भी सम्भावना हो।

तरुणी— ऐसे एकान्त से या ऐसी परिस्थिति से बचकर रहने पर भी तो धोखा खाना पड़ता है गुरुदेव ! मनमें जब कोई व्यक्ति बस जाता है और बाद में वह जब निकलजाता है, तब मन को घायल कर जाता है।

गुरुदेव– पर देखने से, बार बार के सम्पर्क से, बात चीत से यह भाव तो मन में जग ही जाता है कि इस व्यक्ति के साथ जीवन आनन्द से कटेगा। तब उसी ढंग के स्वप्न आने लगते हैं, कल्पना चित्र झूलने लगते हैं। लेकिन बाद में जब स्वप्न भंग होजाता है, वह व्यक्ति धोखा देजाता है तब मन को ऐसा झटका लगता है कि जीवन धराशायी होजाता है।

गुरुदेव– इसका कारण आत्मगौरव की कमी है बेटी !

तरुणी– आत्म गौरव की कमी ! इसमें आत्मगौरव का क्या सवाल है गुरुदेव ?

गुरुदेव— प्यार में इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिये कि प्यार करके न हम किसी पर दया कर रहे हैं न प्यार पाकर दयनीय बन रहे हैं। यह तो ऐसा सौदा है जिसमें दोनों लाभ में हैं। और जब तक दोनों इस बात का अनुभव न करें तब तक प्यार सफल नहीं हो सकता, न स्थायी बन सकता है।

तरुणी— यह तो ठीक है गुरुदेव ! परन्तु इसमें आत्मगौरव की क्या बात आई ?

गुरुदेव– जब कोई व्यक्ति हमारी अवहेलना करके चला जाता है तब इसका अर्थ यह है कि उसने हमारा मूल्यांकन नहीं किया इसतरह उसने हमारा अपमान किया।

तरुणी– हां ! यह तो ठीक है गुरुदेव। अपमान तो उसने किया ही, और इसी का तो दर्द होता है।

गुरुदेव– दर्द होना स्वाभाविक है। पर बाद में अपमान करनेवाले पर आकर्षण क्यों रहना चाहिये ? हमारा स्वाभिमान जगना चाहिये कि जो व्यक्ति मेरा ठीक मूल्यांकन नहीं कर सकता वह मेरे योग्य नहीं था। अच्छा हुआ वह समय पर चला गया। अगर वह न जाता और विवाह के बाद पछताता तो सारा जीवन बर्बाद होजाता। मुझे दयनीय बनकर रहना पड़ता। इस दयनीयता से बचाव हुआ, भविष्य का एक संकट टला, इसप्रकार सन्तोष होना चाहिये।

तरुणी– आप का हिसाब बहुत ठीक है गुरुदेव, सचमुच ऐसे हिसाब के बिना जीवन में शान्ति नहीं मिलसकती। फिर भी...।

गुरुदेव– फिर भी क्या बेटी ! यही की ऐसा हिसाब किस किस के साथ लगाते रहेंगे ?

तरुणी– हां गुरुदेव ! आये दिन तो ऐसे सम्बन्ध होते

नहीं, कभी कभी होते हैं और जब वे भी ऐसे निकल जायँ तब बड़ी निराशा होती है। मनमें जो पूरी तरह समाजाता है वही जब निकल जाता है तब ऐसा मालूम होता है कि मानों प्राण ही निकल गये।

गुरुदेव– यहीं तो संयम रखने की जरूरत है बेटी ! केवल सौन्दर्य से या हावभाव से किसी को मनमें पूरी तरह समालेना ही तो भूल है। नर नारी के सच्चे प्यार का प्रश्न केवल आंखें सेंकने का प्रश्न नहीं है वह जीवन भर के सुखदुःखों को आपसमें विलीन करके समन्वित करने का प्रश्न है। इसलिये जब तक इस तरह की तैयारी दोनों ओर न दिख पड़े तब तक किसी को पूरी तरह मनमें समालेने की भूल न करना चाहिये।

तरुणी– यदि ऐसी भूल होजाय तो ?

गुरुदेव– तो भूल दुरुस्त कर लेना चाहिये।

तरुणी– पर भूल दुरुस्त करने से क्या होगा ?

गुरुदेव– उस भूल के आधार से जो मनमें झूठी आशाओं का अम्बार लगाया था उसकी निःसारता मालूम होजायगी। और ऐसा मालूम होने लगेगा कि अब मैं एक पागलपन से छूट गई हूं। थोड़ी तकलीफ तो होगी पर वास्तविकता की जमीन पर पैर टिक-जाने से एक तरह की निश्चिन्तता भी होगी।

तरुणी— आपके तर्क बड़े जोरदार हैं गुरुदेव, पर जीवन सिर्फ तर्क के आधार पर तो खड़ा नहीं होता, उसमें भावनाओं का भी हिसाब लगाना पड़ता है।

गुरुदेव– पर मैंने भावनाओं के ही हिसाब का तो तर्क पेश किया है बेटी !

तरुणी– पर यह पुरुष की भावनाओं का हिसाब हुआ गुरुदेव ! नारी की भावनाओं का हिसाब कुछ दूसरा ही है। पुरुष मनमें समाये व्यक्ति को जितनी जल्दी बाहर कर सकता है उतनी

जल्दी नारी नहीं कर सकती।

गुरुदेव– सदियों के संस्कार के कारण नारी के हृदय में यह दुर्बलता जरूर आगई है। आर्थिक राजनैतिक सामाजिक सभी परिस्थितियाँ नारी के प्रतिकूल रहीं हैं। पैसे पर उसका अधिकार नहीं रहा, बहुपत्नीत्व की शिकार रही, यहां तक कि विधवा होने पर भी बहुत से वर्गों में वह विवाह के अधिकारसे वञ्चित रही, इन सब बातों का यह परिणाम हुआ कि उसकी मनोवृत्ति इतनी दुर्बल होगई कि उपेक्षित और सत्य होने पर भी उसका स्वाभिमान जग न सका। इसलिये तुम्हें पुरुष की भावनाओं का हिसाब और नारी की भावनाओं का हिसाब अलग अलग लगाना पड़ता है।

तरुणी– आपने बहुत ठीक निदान किया गुरुदेव! वास्तविकता यही है। पर कारण कुछ भी हो जब वास्तविक स्थिति ऐसी है तब व्यवहार तो उसी के अनुसार करना पड़ेगा। जब उसमें यह दुर्बलता है तब उपाय भी तो उसी के अनुरूप होना चाहिये।

गुरुदेव– हां बेटी, मैं उसी अवस्था के अनुरूप उपाय की बात भी कहता हूं और अब उस दुर्बलता का कारण नहीं हैं इसलिये उस दुर्बलता के त्याग की भी बात कहता हूं। जब नारी में यह दुर्बलता है कि एक बार जो उसके मनमें समा जाता है उसे यह सरलता से निकल नहीं सकती, तब उसका यह फर्ज होजाता है कि वह सौ तरह से परखे बिना केवल हावभाव, मीठी मीठी बातें या सौन्दर्य आदि से प्रभावित होकर किसी को अपने मनमें जगह न दे। पुरुष की अपेक्षा उसे कई गुणी सतर्कता की और कई गुणी कठोरता की जरूरत है।

तरुणी– यह बिलकुल ठीक है गुरुदेव। नारी को इस विषय में साधना करना चाहिये। पर ऐसा होने पर भी सम्भव है कि वह धोखा खाजाय। तब धोखा खाने पर वह अपना स्वाभिमान कैसे जगाये?

गुरुदेव- परिस्थिति इतनी बदल चुकी है कि नारी को उस दुर्बलता का कारण चतुर्थांश से भी कम रह गया है । अब राजनैतिक दृष्टि से उनके अधिकार काफी बढ़गये हैं, । विधवाविवाह आदि के बारे में भी बहुतसी बाधाएँ हटगई हैं । बहुपत्नीत्व का रिवाज खतम होगया है । आर्थिक कठिनाई है, फिर भी पहिले से बहुत कम है । उसके आर्थिक अधिकार भी मान्य हैं । और कुछ प्राप्त भी हैं । और तुम सरीखी नारियों को, जो अर्थोपार्जन के क्षेत्रमें काफी बढ़ी हुई हैं, इस विषयमें कोई चिन्ता है ही नहीं । फिर तुम्हारे लिये प्यार में धोखा खाने का सवाल क्या है ?

तरुणी- पर प्यार में धोखा तो होता ही है गुरुदेव ? यहां तक कि पुरुष भी प्यार में धोखा खाने की बात कहते हैं । आज कल तो प्यार मे धोखा खाने के गीत हर एक के मुँह पर हैं । आजकल यह धोखेबाजी बहुत बढ़गई है गुरुदेव !

गुरुदेव- पुराना जमाना हमारे सामने नहीं है, न उस जमाने की रिपोर्ट हमारे सामने है इसलिये धोखेबाजी कितनी बढ़ी कितनी घटी कह नहीं सकते । यो शकुन्तला और दुष्यन्त के कथानक प्यार की धोखेबाजी के ही तो उदाहरण हैं । यह भी एक पुराना दोहा है—

जो मैं ऐसा जानती प्रीति किये दुख होय ।
नगर ढिंडोरा पीटती प्रीति न करियो कोय ।।

सो प्यार की धोखेबाजी का इतिहास पुराना है, पर है सब अपनी मूर्खता का परिणाम ।

तरुणी- इसमें मूर्खता है ! क्या किसी पर विश्वास करना मूर्खता है !

गुरुदेव- शिष्टाचार, साधारण मैत्री व्यवहार, या गम्भीर विचार किये बिना उठवाली तरंगों के आधार पर निकलनेवाले प्रेमल शब्द, या प्रेमल व्यवहार को गहरा समझलेना और जीवन की इमारत रचने का संकल्प कर बैठना मूर्खता नहीं तो क्या है ?

नर नारी में जो परस्पर आकर्षण विधाता ने भर दिया है उसके कारण सहज ही है कि जवानी के प्रारम्भमें सौन्दर्य आदि के निमित्त से वे प्रभावित होजायँ। और प्यार की बातें करने लगें। ऐसी बातें एक से नहीं अनेकों से होसकती हैं। पर एक से बातें होने को न प्यार समझना चाहिये, न दूसरे से बातें होने को धोखेबाजी समझना चाहिये। जैसे एक ग्राहक इच्छित सौदा खरीदने को दस दूकानों पर जाता है तरह तरह से जाँच परख करता है, तो इसका मतलब यह तो नहीं कि जिस दूकान पर वह पहिले गया था वह दूकानदार ग्राहाक को धोखेबाज समझले। इसी तरह युवक युवतियाँ आपस में मिलते है तो इतने से किसी को यह न समझ लेना चाहिये कि यह हमसे प्रेम करता है या प्रेम करती है और यह विवाह का संकल्प है। इसी शिष्टाचार को विवाह का संकल्प समझ लेना मूर्खता है। इसमें धोखा खानेवाले की ही भूल है। कई तो इतने मूर्ख होते हैं कि वे जिसको चाहते हैं वह अगर बदले मे उन्हें नहीं चाहता तो इसे भी धोखेबाजी समझते हैं। यदि एक व्यक्ति को पचास व्यक्ति चाहने लगे तो वह किस किस के साथ विवाह कर सकेगा। इसलिये जब तक विवाह की बात बिलकुल पक्की न होजाय तब तक उसे शिष्टाचार ही समझना चाहिये। शिष्टाचार के विवाह में परिणत होने की सम्भावना नहीं के बराबर ही होती है इसलिये इसके धोखे मे आकर मन या तन न दे बैठनाचाहिये।

तरुणो- सचमुच गुरुदेव, आपका यह विश्लेषण प्यार के नशेबाजों का नशा उतारने वाला है। पर कभी कभी ऐसा होता है कि कोई इतना गुणी साथी मिलजाता है कि उसे देखते ही ऐसा लगता है कि इससे अच्छा साथी हमें मिल नहीं सकता, इसके साथ जिन्दगी बड़ी सुख शान्ति से बीतेगी। इसलिये उसे प्रसन्न करने की कोशिश होती है, और बहुत कोशिश करने पर भी जब वह नहीं अपनाता तब बड़ा दुःख होता है।

गुरुदेव- होता है पर जिसरूपमें होता है उसरूप मे होना

न चाहिये। और साथमें कुछ सुख भी होना चाहिये ?

तरुणी-इसमें सुख! इतनी चोट खाकर भी सुख क्या होगा ?

गुरुदेव-यही कि एक संकट टलगया। जो हमारे प्रेम की कद्र नहीं करता, हमारे चाहने पर भी हमें नहीं चाहता, वह अगर विवाह में बँधगया होता तो उसे रिझाते रिझाते और उसके कीमतीपन की कीमत चुकाते चुकाते दम निकल गया होता। जो हमें न चाहे और हम उसके पीछे पड़ें तो यह पशुता से भी गई बीती बात है। नर हो या नारी किसी को भी इतना आत्मगौरव न खोना चाहिये। और यह भी एक धोखा है कि विवाह के पहिले जो प्रेम दिखाई देता है। शिष्टाचार और सेवाभाव दिखाई देता है वह विवाह के बाद बना रहेगा। विवाह के पहिले तो दोनों एक दूसरे के मेहमान होते हैं। मेहमान का सन्मान करना, सेवा करना, विनय व्यवहार रखना यह साधारण कर्तव्य है इसमें संघर्ष की गुंजाइश नहीं है। पर विवाह के बाद दस बीस दिन से अधिक कोई किसी का मेहमान नहीं रहता इसलिये मेहमान के योग्य शिष्टाचार सेवाभाव विनय व्यवहार आदि भी समाप्त होजाता है। इसे भी लोग धोखा समझते हैं। इसप्रकार के भ्रम से यदि हम बचे रहें और आत्मसन्मान का ख्याल रक्खें तो प्यार के असफल होने की नौबत न आयगी।

तरुणी- यदि विवाह के पहिले के व्यवहार से विवाह के बाद के व्यवहार का अन्दाज नहीं लगाया जासकता तो आदमी को कैसे समझा जाय ? तब तो सब धोखा ही धोखा है।

गुरुदेव—नहीं बेटी, इसमें धोखा नही है, यह तो सहज बुद्धि की बात है। विवाह के पहिले के व्यवहार से आदमी की योग्यता स्वभाव रुचि आदि का काफी परिचय मिल सकता है। और यह अन्दाज लगाया जासकता है कि दाम्पत्य जीवन में जिन जिन कार्यों की जरूरत पड़ती है उनमें से कौन किसको सँभालेगा।

विवाह के पहिले आदर और शिष्टाचार की मुख्यता है विवाह के बाद परस्पर सहयोग और कर्तव्य तत्परता की मुख्यता है। यह अन्तर ध्यान में रहे तो बहुत कुछ समझा जासकता है जिसमें धोखा न खाना पड़े।

तरुणी—आपने तो गुरुदेव, सचमुच मुझे वास्तविकता के धरातल पर खड़ा करदिया है। बहुत बड़ा भ्रम दूर कर दिया है। जिसने मुझे धोखा दिया है अब उसके विषय में क्या सोचूं ?

गुरुदेव—यही कि वह तुम्हारे योग्य नहीं था।

तरुणी- पर यह तो झूठमूठ मन समझाने की बात हुई गुरुदेव, अन्यथा मन तो कहता है कि वह योग्य थ। बहुत योग्य था।

गुरुदेव—कोई व्यक्ति अधिक योग्य होसकता है पर उसकी सब से बड़ी अयोग्यता तो यह है कि वह हमसे सन्तुष्ट नहीं है, हम मे उसका मन बँध नहीं सका है, वह हमारे प्रेम की कीमत कर नहीं सका है। दाम्पत्य के यही मुख्य आधार है। इनमें जो योग्य नहीं वह अन्य सब बातों मे योग्य होकर भी हमारे योग्य नहीं होसकता।

तरुणी-बहुत ठीक गुरुदेव, बहुत ठीक। आज आपने जीवन की सच्ची परख करा दी, आत्मगौरव का भान कराकर इन्सानियत पैदा करदी, दिल का सारा दर्द दूर कर दिया। यह दवा मेरे ही लिये नहीं, सभी युवतियों के लिये, और युवकों के लिये भी रामबाण है। आज मेरी यह यात्रा अप्रत्याशित रूप में सफल हुई है।

यह कहकर तरुणी प्रणाम करके चलीगई। पर जाते जाते कह गई कि अब आप जीवनभर के लिये मेरे गुरुदेव है इसलिये समय समय पर आपको कष्ट दिया करूंगी।

२२ धनी ११९६१ इ. सं.
२९-१०-६१ उदयरात्रि ३॥ बजे

सत्यभक्त
सत्याश्रम वर्धा

१६– भाईचारे की नीति

चित्रगुप्त मध्यम श्रेणी के गृहस्थ हैं। मालूम नहीं इनके मातापिता को कैसे पता लग गया था कि यह बालक हिसाब किताब में बड़ा होश्यार और चौकन्ना होगा इसलिये इसका नाम चित्रगुप्त रख दिया। या इनने ही सोच समझकर अपने नाम के अनुरूप वृत्ति बनाई। जो कुछ हो बही खाते के हिसाब में ये बड़े होश्यार थे और इनको एक पाई भी कभी घपले में नहीं पड़ती थी। यों उदार भी काफी थे। जातिभोज आदि के नामपर सैकड़ों रुपये खर्च करने में पीछा नहीं देखते थे। फिर भी उनकी यह उदारता उनके बहुत से मित्रों को खुश न रखपाती थी। बहुत से मित्र इनके निन्दक होजाते थे। ये भी उनके निन्दक होजाते थे। और बहुत से तो इनसे बुरी तरह किनारा काटते थे। इससे कभी कभी इनके मनमें बड़ी चिन्ता और वेदना होने लगती थी। उस दिन गुरुदेव के सामने इनने अपनी सारी चिन्ता और वेदना रखदी। बोले– मैं समाज के लिये इतना खर्च करता हूँ फिर भी न जाने क्या दुर्भाग्य है गुरुदेव, कि लोग मेरे निन्दक होजाते हैं।

गुरुदेव ने पहिले तो साधारण रूप में कहा कि–लोगों के कुछ स्वार्थ होते है और उसी आशा से सम्पर्क मे आते है, पर जब आशा पूरी नहीं होती तब निन्दक बनजाते हैं। अथवा प्रारम्भ में आशा पूरी होजाती है पर पीछे उनकी आशा बढ़जाती है जिसे पूरा नहीं किया जासकता तब भी वे निन्दक बनजाते हैं।

चित्रगुप्त- हां ! ऐसे अनुभव तो कई बार आये। और उनकी चिन्ता करना मैंने छोड़ दिया है। परन्तु कई ऐसे मित्र हैं जिनको मैं जानता हूँ कि वे स्वार्थी नहीं है पर वे भी मुझसे घृणा करने लगते हैं और मै भी घृणा करने लगता हूँ, इनका मुझे बहुत दुःख है।

गुरुदेव- हां ! यह जरूर चिन्ता की बात है। पर घट-

नाओं का विवरण जाने बिना उसकी चिकित्सा करना कठिन है।

चित्रगुप्त- यह तो आपको मालूम ही है कि मै हिसाब किताब में बड़ा चोख हूँ, और उदार भी हूं।

गुरुदेव- यह तो मालूम है परन्तु यह सब विनिमय की बात हुई। विनिमय के क्षेत्र में चोख होने से मनुष्य उदार नहीं कहा जासकता। ईमानदार कहा जासकता है। पर उदार बात दूसरी है।

चित्रगुप्त—परन्तु मैं सैकड़ों रुपये खर्च भी करता हूँ।

गुरुदेव-वह भी एक विनिमय है। वह नाम प्रतिष्ठा का विनिमय है। इनसे समाज में नाम होता है परन्तु सज्जनों से मित्रता और भाईचारे का आधार ये बातें नहीं बन सकती। उदारता की परख होती है वहां जहां नाम या बदनामी के प्रगट होने का अवसर नहीं होता। और प्रेमवश आत्मीयतावश उदारता प्रगट होती है। सिर्फ पैसे की उदारता नहीं व्यवहार की भी उदारता।

चित्रगुप्त- व्यवहार की उदारता से क्या मतलब है?

गुरुदेव- सम्पर्क में आनेपर दूसरों की सुविधाओं का अधिक खयाल रखना या पहिले खयाल रखना, सुविधाएँ झपटने की चेष्टा न करना, सेवामे सहयोग करना व्यवहारकी उदारता है।

चित्रगुप्त- पर जीवन तो संघर्षमय है गुरुदेव! अगर ऐसी उदारता बताई जायगी तो जीना मुश्किल होजायगा। अगर रेल में हम सुविधाएँ झपटने की कोशिश न करें तो घुसना मुश्किल होजाय, यात्रा करना मुश्किल होजाय।

गुरुदेव- हमारे देश के नागरिकों का जैसा चरित्र है, उदारता न्याय और भाईचारे का जिस प्रकार उनमें अभाव है, उसे देखते हुए ऐसा संघर्ष किसी तरह निंद्य होनेपर भी स्वाभाविक है। पर यह संघर्ष किसी तरह वहीं क्षन्तव्य होसकता है जहां अपना परिचय नहीं है, मित्रता नहीं है, भाईचारा नहीं है।

मित्रों और कुटुम्बियों के साथ न्याय की अपेक्षा अपने स्वार्थ को मुख्यता देदें तो मित्रता तथा भाईचारे को तो धक्का लग ही सकता है।

चित्रगुप्त-हां! लग तो सकता है पर किया क्या जाय ? क्या ट्रेन में न चढ़ाजाय ?

गुरुदेव-ट्रेन तो यहां जीवन यात्रा का उदाहरण मात्र है। यों ट्रेन में चढ़ो, जहां जिसको जगह मिलजाय जगह भी ले लो, पर इसके बाद मित्रों और कुटुम्बियों की असुविधा का ध्यान रक्खो। अगर वे तुम्हारी अपेक्षा विशेष असुविधा में हो विशेष कष्ट मे हो तो कुछ अपना कष्ट बढ़ाकर उनका कष्ट घटाओ और कुछ समीकरण करो। जितनी बन सके सुविधाओं का दान करो। छीनने की चेष्टा न करो। मानलो तुम्हारा मित्र कुछ ऐसी जगह बैठा हुआ है जहां तुम बैठना चाहते हो ! वह पेशाब को गया और तुमने उसकी जगह हथियाली। उसने मित्रतावश तुमसे कुछ न कहा और कहीं इधर उधर जगह ढूंढकर बैठगया पर इससे तुम मित्रको खो दोगे।

चित्रगुप्त- पर ट्रेन में मै ऐसा कभी नहीं करता।

गुरुदेव-यह अच्छी बात है। ऐसा करना भी न चाहिये। पर मैंने कहा है कि ट्रेन तो एक उदाहरण है। जीवन की यात्रा में कहीं भी ऐसी छीनाझपटी मित्रों के साथ न की जाय यह जरूरी है। कहीं कोई सुविधा लेना भी हो तो पूछकर कृतज्ञता प्रगट करते हुए लेना चाहिये, अधिकार समझकर नहीं। और वह भी तभी जब मालूम हो कि किसी कारणवश उस सुविधा की जरूरत तुम्हें मित्र की अपेक्षा अधिक है। मनुष्य बड़ीबड़ी दिखाऊ और प्रसिद्धि की बातों में उदार बनजाता है पर इन छोटी छोटी बातों में अनुदार और अन्यायी रह जाता है जब कि मित्रता और भाईचारे की परख इस छोटी बातों में ही होती है।

चित्रगुप्त- इस दृष्टि से मुझे आत्मनिरीक्षण करना पड़ेगा

गुरुदेव, सम्भवतः इस दृष्टि से कुछ भूलें होजाती हैं। पर मेरा अनुभव यह भी है कि छोटी छोटी बातों मे भी मैं आत्मीयता बताता हूं तो भी लोग कद्र नहीं करते।

गुरुदेव-अगर ऊपर बताई हुई भूलें होजाती हों तो आत्मीयता बताने की कद्र नहीं होती। फिर आत्मीयता बताने का तरीका भी देखना चाहिये। किसी से कोई सेवा लेना भी आत्मीयता का चिह्न है और सेवा देना भी आत्मीयता का चिह्न है। किसी की किसी चीज का उपयोग कर लेना या वेतकल्लुफी से उसकी चीज लेलेना भी आत्मीयता का चिन्ह है और अपनी चीज देदेना भी आत्मीयता का चिन्ह है। यहा बहुत बड़ी सतर्कता की जरूरत है। मानलो तुम किसी बराबरी के आदमी से शारीरिक सेवा तो लेते रहते हो और स्वयं समर्थ होकर भी वैसी सेवा नहीं करते, या उसकी अनिच्छा रहते हुए भी सेवा लेलेते हो और वह संकोचवश कुछ कह नहीं पाता तो वह सेवा देकर तुम से घृणा करेगा। वह निन्दक होजायगा और भविष्य में तुम्हारे सम्पर्क में न आयगा। इसीप्रकार तुम वेतकल्लुफी से चीज लेलिया करो और उसके अनुरूप चीज दिया न करो तो इससे आत्मीयता न बढ़ेगी, घृणा बढ़ेगी, दूरी बढ़ेगी, असहयोग बढ़ेगा, सम्पर्क घटेगा। आत्मीयता का परिचय सदा कुछ सेवा या सम्पत्ति देकर ही दिया जाना चाहिये, लेकर नहीं। लेना तो तभी चाहिये जब बार बार के अनुरोध से दिया जाय। फिर भी समय पर उसका प्रतिदान भी करना चाहिये।

चित्रगुप्त-प्रतिदान का तो बार बार खयाल रखता हूँ गुरुदेव! कभी कभी समाज मे निमंत्रित होकर जाता हूँ। और इस तरह साल दो साल में दूसरों का दस बीस रुपये का माल खाता हूँ तो अवसर आते ही सैकड़ों रुपया खर्च करके भोज देता हूँ। प्रतिदान मे कोई कसर नही रखता गुरुदेव!

गुरुदेव- साधारणतः यह ठीक है। प्रतिदान करना ही

चाहिये। पर कभी कभी ऐसा होता है कि मनुष्य खुले हुए प्रगट प्रतिदानों में उदार होता है और अप्रगट प्रतिदानों में अनुदार होता है। क्योंकि वह सोचता है कि प्रगट प्रतिदानों में नाम होता है और अप्रगट प्रतिदानो में नाम नहीं होता। इसलिये वह प्रगट प्रतिदानों में काफी उदारता दिखाता है और अप्रगट प्रतिदानों में, व्यक्तिगत प्रतिदानो मे, अत्यन्त अनुदार बनजाता है। फल यह होता है कि लोग उसे नाम का व्यापारी या नाम का खरीददार तो समझते है पर उदार नहीं समझते। यहां तक कि इस अनुदारता के कारण ईमानदार भी नहीं समझते इसलिये निन्दा भी करते हैं और किनाराकशी भी करते है।

चित्रगुप्त- बात कुछ कुछ ध्यान में आरही है गुरुदेव ! और इस बात का कुछ खेद भी होरहा है कि बहुत कुछ खर्च करने पर भी मैं उदारता का श्रेय नहीं ले पाता। बल्कि अनुदारता का अश्रेय पाजाता हूं।

गुरुदेव-अमाप विनिमय के क्षेत्र में मापविनिमय घुसेड़ने से, और उस विषयमें न्याय का पूरा ध्यान न रखने से ऐसा होता है और लोग कौड़ी बचाने के लिये मुहरों के श्रेय का या प्रेम का बलिदान कर देते है। ऐसे समय बड़े बड़े चतुर हिसाबी भी जिन्दगी का हिसाब भूल जाते हैं।

चित्रगुप्त- जरूर भूल जाते हैं। बहीखाते का हिसाब तो मुझे आता है पर जिन्दगी का हिसाब जरूर कुछ गड़बड़ होता है। इसके कुछ गुरु या सूत्र अलग है वे कुछ सूत्र बतादीजिये।

गुरुदेव- सब से बड़ा सूत्र तो आत्मौपम्यभाव है दूसरे के साथ जब हम कोई व्यवहार करने लगें तब यह सोचलें कि हम जैसा व्यवहार करते हैं हमारे साथ वही व्यवहार दूसरा करे तो कैसा लगे। बहुत कुछ हिसाब तो इससे लग ही जाता है फिर भी कुछ सूचनाएँ दे देता हूँ।

१—इस बात का पूरा ध्यान रक्खो कि स्नेह या बेतकल्लुफी

के नामपर तुमने दूसरों से कोई ऐसी सुविधा या वस्तु तो नहीं ले ली जिसका उसी रूपमें या किसी दूसरे रूपमें तुम ठीक बदला नहीं चुका पाये।

२—अपनी उदारता से यदि तुमने किसी को कुछ दिया है तो उसे वसूल करने की स्वयं चेष्टा न करो। वही जब स्वेच्छा से प्रतिदान करे तभी स्वीकार करो, वह भी कुछ इनकार करते हुए।

३—मिलजुल कर जब कोई काम करो, और उसमें पहिले से हिस्सेबाट की बात तय न हुई हो तो अपना हिस्सा बराबरी से दो। मानलो मिलजुलकर सहभोज किया तो पैसे का हिस्सा बराबर दो। यह न कहो कि मैंने कम खाया तो कम दूँगा आदि। इस विषयमें पहिले कुछ स्पष्टिकरण होगया हो तो बात दूसरी है पर न हुआ हो तो कम खाकर भी बराबर हिस्सा दो। खाने की बात तो उदाहरणमात्र है और भी साझे के सभी कार्यों में इसी प्रकार व्यवहार करो।

४–जब तुम किसी के यहां जाओ तब उनसे जो सेवा लो उसका किसी न किसी रूपमें प्रतिदान जरूर करो। और उचित प्रतिदान करो। इसमें जरा भी कंजूसी न दिखाओ! चार रुपये का खाकर रुपये दो रुपये देने से वही खाते के हिसाब को दृष्टि से तो बचत होगी पर जिन्दगी का हिसाब बिगड़ जायगा, इस दृष्टि से घाटा होगा। हां! जिन लोगों के यहां सदा आना जाना मचा रहता है, तुम उनके यहां वे तुम्हारे यहां ठहरा करते हैं उनकी बात दूसरी है। वहां हर बार पहले हिसाब का ध्यान नहीं रक्खा जासकता फिर भी इस बात का ध्यान रक्खो कि वर्षों के हिसाब में स्थूल रूपमे बहुत अन्तर न होजाय। इस प्रकार ऋण लद गया हो तो उसे किसी न किसी प्रकार जरूर उतारो।

५–जब तक उसका अनुरोध न देखो तब तक किसी के यहां न रुको। उनकी परिस्थिति भी समझो। कहीं ऐसा तो नहीं

है कि उसकी परिस्थिति तो ठहराने लायक नहीं है सिर्फ शिष्टाचार से अनुरोध कर रहा है। इस शिष्टाचार का तुम उपयोग कर लोगे तो आगे से यह शिष्टाचार मिलना भी बन्द होजायगा और तुम घृणापात्र बन जाओगे।

६–साधुओं जनसेवकों और संस्थाओं के प्रति हिसाब दूसरे ढंग का करना पड़ता है। वहां आर्थिक विनिमय नहीं देखा जाता, गुणों और सेवा का आदान प्रदान देखा जाता है।

७–व्यवहार में सेवाएँ तथा वस्तु के उपयोगों का भीतर ही भीतर हिसाब भले ही रक्खो पर हिसाबी वृत्ति का प्रदर्शन न करो।

८–सेवा तथा अन्य कोई भेंट देने में इन बात का ध्यान रक्खो कि वह तुम्हारी दीनता या चापलूसी न समझली जाय। न अहंकार आने दो न हीनता, न मुफ्तखोरी आने दो न अपव्यय।

९–बड़े बड़े भोज देने की अपेक्षा बारीबारी से थोड़े थोड़े आदमियों को भोजन कराना अच्छा होता है। क्यों कि थोड़े आदमियों से प्रेमसम्बन्ध स्थापित किया जासकता है सैकड़ों आदमियों को भोजन कराने से किसी से कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जासकता। हां! गरीबों को भोजन करना हो तो बात दूसरी है। वहां परिचय और प्रेम बढ़ाने की मुख्यता नहीं है उनके भूख का दुःख दूर करने की मुख्यता है। इसी तरह किसी उत्सवमें अधिवेशन में बाहर से लोग आये हो तो उनके भोजन की परेशानी बचाने के लिये उन्हें भोजन कराना ठीक है क्योंकि वह भी उनकी रोटी की आवश्यकता का सवाल है। पर जहां रोटी की आवश्यकता नहीं, प्रेम और सौहार्द बढ़ाने का सवाल है, वहां जितने कम आदमी रहें उतना ही अच्छा। इस दृष्टि से बड़े भोजों का कोई उपयोग नहीं। हां! जहां व्यक्तियों से नहीं पूरे वर्ग से प्रेम प्रदर्शन की मुख्यता है वहां अधिक संख्या हो जाय तो कोई हानि

नहीं. जैसे अमुक संस्था, संघ, हरिजन वर्ग आदि ।

१०-सेवा या कोई चीज जो कुछ देना हो अच्छी दो, अच्छे ढंग से दो ! अथवा श्रेय के बदले निन्दा ही मिलेगी ।

११-आपस में उधार के देन लेन से जरूर वचो । नहीं तो पैसा भी जायगा, भाईचारा भी जायगा । हां ! निस्वार्थ दृष्टि से मदत कर सको तो जरूर करो ! पर देखकर के करीब करीब उसे भुलादो ।

१२—तुम्हारे जानेपर अगर कोई आदमी कार्यव्यस्त मालूम पड़े तो वहां कम से कम ठहरो । अगर तुम्हारी कोई सखी या आदरणीया स्त्री घर काम मे लगी हुई है और वह अपना काम छोड़ने की स्थिति में नहीं है तो उसके काम में हाथ वटाने लगो । या तुरंत चलीआओ ।

१३—मेहमान बननेपर जहां तक बन सके कोई विशेप मांग पेश न करो । जहां तक बन सके उसके बिना काम चलालो । या दूसरी जगह गुप्तरूपमें उसकी पूर्ति होसकती हो तो वही करलो । हां अगर तुम समझो कि यजमान की तीव्र इच्छा है कि तुम्हारी सब या वह मांग पूरी करे और उनमें सामर्थ्य भी है तो एक बार सूचना देदो ।

बस, इतने सूत्र काफी हैं । इसी दृष्टिकोण से सब अवसरों पर भाईचारे की नीति का निर्णय किया जासकता है ।

चित्रगुप्त-काफी है गुरुदेव ! इन सूत्रों से आपने मेरा ही और भी हजारों आदमियो का पथप्रदर्शन किया है ।

यह कहकर प्रणाम करके चित्रगुप्त चलेगये ।

१७ चिंगा ११९६१

२१-११-६१

सत्यभक्त

सत्याश्रम वर्धा

१७- प्यार की फांस

मनोरमा ने गुरुदेव से कहा —कुछ दिन पहिले एक मीठी मीठी दुर्घटना होगई गुरुदेव, इसलिये बहुत बेचैन हूँ । समझ में नहीं आता क्या करूं ?

गुरुदेव-दुर्घटना जब मीठी होती है तब जीवन पर बड़ा भारी संकट बनजाती है। क्योंकि तीखी दुर्घटना का तो मनुष्य बचाव करता है, उसका इलाज करता है, परन्तु जब दुर्घटना मीठी हो तब न बचाव करते बनता है, न इलाज करते बनता है; आदमी किंर्तव्य विमूढ़ होजाता है।

मनोरमा- बिलकुल यही बात है गुरुदेव ! मेरा जीवन साधारणतः ठीक ढंग से हो चलरहा था, ऐसी कोई खास बेचैनी नहीं थी पर उस मीठी दुर्घटना के बाद मन बिलकुल बेचैन होगया है। इसका मेरे स्वास्थ्य पर तो बुरा असर पड़ ही सकता है पर मेरे गृहसंसार में भी घुन लग सकता है।

गुरुदेव- जीवन का मर्म न समझने पर, विवेक से काम न लेने पर यही होता है। खैर! अगर कोई रोग है तो उसका इलाज भी है इसलिये विशेष चिन्ता की बात नहीं है । अब तू मीठी दुर्घटना का ब्यौरा बता जिससे उसका कुछ उपाय सोचा जाय।

मनोरमा- कुछ दिन पहिले मैं बाजार जारही थी कि रास्ते में कृष्णकान्त मिलगया ! तभी से मेरी बेचैनी बढ़गई । पीहर में उसका घर और मेरा घर पास पास में था । धीरे धीरे परिचय गहरा होता गया और एक तरह से प्रेम में परिणत होगया । इस बात की चर्चा होने लगी कि हम दोनों की शादी होजायगी । हम दोनों को भी इसी तरह के स्वप्न आने लगे। पर वह शादी नहीं हो पाई। कृष्णकान्त के पिता खासा दहेज चाहते थे और मेरे पिता दहेज देना नहीं चाहते थे, न उनकी ऐसी परिस्थिति थी कि वे दहेज देते। इसप्रकार यह सम्बन्ध न हो सका। और हम दोनों ही

आंसू बहाते रहगये ।

गुरुदेव- यह कह कि तू आंसू बहाती रहगई । कृष्णकान्त को तो आंसू बहाने की बात ही नहीं थी । यदि उसके आंसू बहते होते तो वह दहेज लेने से इनकार करदेता ।

मनोरमा- कृष्णकान्त की तो इच्छा नहीं थी । इस बात को लेकर उसने मेरे सामने बहुत दुख प्रगट किया था, पर पिता के सामने कुछ कहने की उसकी हिम्मत न थी । 'पिता का दिल कैसे दुखाऊं' इस डर से भी वह कुछ बोल न सकता था ।

गुरुदेव हँसे और बोले- और तू उसकी इन बातों पर विश्वास करती थी ? प्यार का मूल्यांकन तो बड़े गजब का है तेरा ! खैर ! असली बात बता कि हुआ क्या ?

मनोरमा कुछ झेंपकर बोली—घटना तो कोई खास नहीं है । आज जब वह बाजार में मिला तभी से हृदय बेचैन है । अब उसकी बदली इसी शहर में होगई है । वह एक दो बार और मिल चुका है । उसका भी विवाह हो चुका है पर वह अपने वैवाहिक जीवन से सन्तुष्ट नहीं हैं । मुझे भी ऐसा मालूम होता है कि मेरा उसका सम्बन्ध हुआ होता तो दोनों का जीवन अधिक सुखी हुआ होता ।

गुरुदेव-अभी तुझे क्या दु ख है ?

मनोरमा-कहने लायक खास दु ख तो कुछ नहीं है फिर भी कभी कभी छोटी छोटी बातोंपर संघर्ष हो ही जाता है । और एक दो दिन उससे बड़ी बेचैनी रहती है । फिर निरुपाय होकर किसी तरह सुलह कर लेनी पड़ती है । सोचती हूं कि कृष्णकान्त के साथ विवाह हुआ होता तो ऐसे संघर्ष के मौके न आये होते ।

गुरुदेव-संघर्षों का कारण ही न रहता । क्योंकि एकाध साल के भीतर तुम दोनों का छुटाछेड़ा होगया होता । और बिलकुल अलग अलग होजाने पर संघर्षों का कारण ही क्या रहता ?

मनोरमा— ऐसा कैसे सम्भव था गुरुदेव ?

गुरुदेव- ऐसा ही सम्भव था। तूने यह कैसे समझा कि तुझमें और कृष्णकान्त में कोई संघर्ष न होता।

मनोरमा-विवाह के पहिले हम लोगों में जैसा प्रेम था, एक दूसरे के प्रति जैसा आदर था, उसे देखते हुए संघर्ष की कल्पना ही नहीं की जासकती।

गुरुदेव- विवाह के पहिले तुम एक दूसरे के लिये मेहमान थे। एक दूसरे के प्रति कर्तव्य करने की तुम्हारे ऊपर कोई जिम्मेदारी न थी इसलिये परस्पर प्रेम और आदर सब सुरक्षित थे। विवाह के पहिले जो तुम एक दूसरे के लिये करते थे वह हिसाब में लेलिया जाता था, जो नहीं करते थे उसके हिसाब का कोई सवाल ही खड़ा नहीं होता था क्योंकि उस विषयमें किसी पर कोई जिम्मेदारी नहीं थी। सब अपनी अपनी अलग परिस्थितियों के कारण जिम्मेदारी से मुक्त थे। विवाह के बाद ऐसा नहीं होता। दोनों एक दूसरे के प्रति कुछ कर्तव्य की अपेक्षा करने लगते हैं और अधिकार के साथ करने लगते हैं। उसमें थोड़ी सी भी त्रुटि खटकने लगती है। और कुछ समय बाद वह खटकन असह्य होजाती है। इसलिये विवाह के पहिले के व्यवहार से बाद के व्यवहार का अंदाज नहीं लगा सकता।

मनोरमा- आपकी बात तो मेरे लिये बिलकुल नई है गुरुदेव! और बिलकुल तर्कसंगत भी है। फिर भी यह मानने को जी नहीं चाहता कि कृष्णकान्त के साथ भी विवाह के बाद ऐसे संघर्ष होसकते थे।

गुरुदेव-जिस समय तेरा विवाह हुआ था उसके बाद तेरे पति का कैसा व्यवहार था?

मनोरमा-बहुत अच्छा था। मुझे हर तरह सन्तुष्ट रखने की ही इच्छा उनकी होती थी। मेरी किसी त्रुटि पर उनका ध्यान ही न जाता था। हर समय प्रसन्न रहते थे और मुझे प्रसन्न रखने की चेष्टा करते रहते थे। पर दो चार माह बाद वह बात न

रही ।

गुरुदेव—फिर भी दो चार माह तक रही । अगर कृष्ण कान्त के साथ शादी हुई होती तो महीना पन्द्रह दिन भी न रहती ।

मनोरमा—क्यों ?

गुरुदेव- क्योंकि नर नारी जब मिलते हैं तब पहिले उनमें कामुकता की प्रबलता रहती है इसलिये कर्तव्य की जिम्मेदारी भूली रहती है । कुछ दिनों तक एक दूसरे को मिहमान भी समझते हैं । एक दूसरे के स्वभाव की परख भी करते हैं इसलिये कुछ दिनों तक त्रुटियों पर उपेक्षा रहती है । पर प्रेमविवाहों में थोड़ा बहुत यह सब कार्य पहिले ही हो चुका होता है इसलिये नविनता का आकर्षण शीघ्र समाप्त होजाता है । और कर्तव्य का हिसाब किताब जल्दी प्रगट होजाता है । विवाह के पहिले के व्यवहार से तुलना होने लगती है इसलिये यह हिसाब किताब खटकने लगता है । यही कारण है कि बहुत से प्रेमविवाह असफल जाते हैं ।

मनोरमा-इसका तो मतलब यह हुआ गुरुदेव, कि प्रेमविवाह न करना चाहिये ।

गुरुदेव- प्रेम विवाह में हानि नहीं है, बल्कि कई दृष्टियों से प्रेमविवाह अच्छा भी है । दम्पति के लिये भी अच्छा है । सिर्फ जरूरत इस बात की है कि विवाह के पहिले के व्यवहार या शिष्टाचार से विवाह के बाद के व्यवहार या शिष्टाचार की तुलना न करना चाहिये । दोनों को अपनी अपनी जिम्मेदारियाँ समझना चाहिये और त्रुटियों को दर-गुजर करने का संकल्प कर लेना चाहिये । फिर प्रेमविवाह मे कोई हानि नहीं ।

मनोरमा—इसका यह मतलब भी हुआ गुरुदेव, कि विवाह के पहिले कृष्णकान्त के साथ जो व्यवहार या शिष्टाचार था उसकी तुलना में अपने इस वैवाहिक जीवनके साथ भी न करूं।

गुरुदेव—बहुत कुछ ठीक समझी तू । फिर भी कुछ और समझने को बाकी है । तूने यह तो कहा ही है कि विवाह के बाद

दो चार माह तक तुम दोनों में कोई संघर्ष नहीं था ।

मनोरमा– हां ! यह बात तो सच है ।

गुरुदेव—अब तू ही हिसाब लगाले । कि जब विवाह के बाद दो चार माह तक इतना आदर प्रेम का व्यवहार था फिर भी संघर्ष हुआ और विवाह के बाद के दो चार माहका प्रेमल व्यवहार भी यह संघर्ष न रोक सका तब विवाह के पहिले का कृष्णकान्त का प्रेमल व्यवहार इस संघर्ष को कैसे रोकपाता ?

मनोरमा– न रोक पाता गुरुदेव, अब बात समझ में आरही है ।

गुरुदेव—फिर इस हिसाब में इस बात का ध्यान रख कि कृष्णकान्त के साथ तेरा विवाह दहेज के कारण न होपाया । कृष्णकान्त ने मुँह से कुछ भी कहा हो पर उसका कार्य दहेज के पक्ष में हुआ जब कि तेरे पति ने दहेज के प्रश्न पर पूरी उपेक्षा की । इस प्रकार यह बात तो स्पष्ट है कि जहां तक त्याग का सम्बन्ध है कृष्णकान्त की अपेक्षा तेरा पति अधिक त्यागी है ।

मनोरमा– बिलकुल ठीक गुरुदेव, बिलकुल ठीक । आपने तो मेरी आंखे खोल दीं । मेरे जीवनमें जो नरक घुसरहा था उसे आपने निकाल बाहर कर दिया । स्वर्गीयता बढ़ा दी ।

गुरुदेव—दाम्पत्य जीवन में नरक और स्वर्ग बहुत पास पास रहते हैं बेटी । थोड़ी सी गफलत से या दृष्टिदोष से नरक घुसने लगता है ।

मनोरमा– बिलकुल सच है गुरुदेव ! पर आप सरीखे पहरेदार मिलें, चिकित्सक मिलें तो नरक की क्या ताकत जो थोड़ा भी प्रवेश कर सके । पर अब कृपाकर इतना और बतलाइये कि कृष्णकान्त के साथ कैसा व्यवहार करूं ! मेरा पुराना खिंचाव खत्म होगया है पर उसका पुराना खिंचाव बना हुआ है । ऐसी अवस्था में अनजान में भी कोई ऐसी बात होसकती है जिससे मेरे पति को सन्देह होजाय और इस नये द्वार से जीवन में नरक

घुसने लगे ।

गुरुदेव—पति पत्नी के जीवन में जब कोई ऐसे छिपे हुए रहस्य रहजाते हैं तब उनके जीवन में विष्फोट होने की सम्भावना बनी रहती है । यदि वह रहस्य खुला कर दिया जाय और शब्दों से तथा व्यवहार से वह रहस्य निर्विष कर दिया जाय तो फिर कोई आशंका नहीं रहती ।

मनोरमा- फिर भी मैं समझ नहीं पारही हूँ कि रहस्य को कैसे निर्विष किया जाय ?

गुरुदेव-तू यह तो अनुभव करने लगी है न, कि कृष्णकान्त के साथ विवाह न होकर तेरे पति के साथ जो विवाह हुआ वह ठिक ही हुआ । और इससे तू कुछ लाभ में रही है ।

मनोरमा-हां ? यह बात तो मेरी समझ में आगई है ।

गुरुदेव-तब रास्ता साफ है । तू अपने पति से कह दे कि "कृष्णकान्त मिला था । पहिले उसके साथ विवाह की बातचीत चलरही थी । पर उसके कुटुम्बियों के दहेज प्रेम के कारण न होसकी । मेरा भाग्य ही कहना चाहिये कि तुम सरीखे उदार व्यक्ति से मेरी शादी हुई । अब कृष्णकान्त मेरे लिये भाई के समान है । सोचती हूँ कि आगामी रक्षाबन्धन के दिन उसे राखी बाँधने के लिये बुलाऊं ।"

मनोरमा—बहुत ठीक रास्ता है गुरुदेव ! पर कृष्णकान्त से सहसा यह बात कैसे कह सकूंगी ।

गुरुदेव—सहसा कहने की जरूरत नहीं है । पहिले तो विचार रखना चाहिये कि 'मैं तो जीवन को एक नाटक शाला समझती हूं । किस पात्र के साथ कौन सा अभिनय कब करना पड़ेगा इसका ठिकाना नहीं । विवाह होजाता तो दाम्पत्य का अभिनय होता, नहीं हुआ तब धार्मिक रिश्तेदारी के अनुसार बहिन भाई का अभिनय होगा । प्रेम न टूटना चाहिये भले ही रिश्ता कोई भी रहे ।' इतनी भूमिका बाँधने के बाद जब दूसरे

बार मिलना हो तब उसे कृष्णकान्त कहकर न पुकारना किन्तु कृष्णकान्तभाई कहकर पुकारना। इसके बाद या तो बहिनभाई का रिश्ता कायम होजायगा या उसे यह व्यवहार पसन्द न आयगा तो रिश्ता टूट जायगा। हर हालत में उलझन सुलझ जायगी। प्यार की फांस निकल जायगी।

मनोरमा का हृदय सन्तोष और आनन्द से भर गया। हर्ष के मारे उसकी आंखे आंसुओं से भरगई। वह गुरुदेव के चरणों पर अपना सिर रगड़ने लगी। बोली—किस महान संकट से उबार लिया आपने गुरुदेव! मैं मूढ हूँ। आपके प्रति कृतज्ञता प्रगट करने को मेरे पास शब्द ही नहीं हैं। यह कहकर हर्षाश्रु पोंछती हुई चलीगई।

२० चिगा ११९६१ इ. सं. सत्यभक्त
२४-११-६१ सत्याश्रम वर्धा

१८—नारी का गौरव

उसदिन सुजाता ने गुरुदेव के पास आकर कहा-गुरुदेव! आप तो नर नारी समभाव का सन्देश देते हैं, नारियों के गौरव बढ़ाने की बात भी कहते हैं पर समझ में नहीं आता कि यह बात व्यवहार में कैसे आयगी? हर जगह और पद पद पर नारियों के गौरव को नष्ट करने की बातें होती है हर जगह उनका गौरव छीना जाता है।

गुरुदेव ने पूछा—आज तू किस बात से उत्तेजित होकर आई है?

सुजाता-आज की बात नहीं है गुरुदेव। हर दिन की बात है। मैं सासू जी के कहने से उनका साथ देने के लिये प्रतिदिन कथा सुनने जाती हूं। कथा में स्त्रीनिन्दा भरीपड़ी है। वे नरक की खानि है, विषकी बेल है, पाप के उदय से उनका जन्म है, वे मूढ़ता माया लोभ तृष्णा की भंडार है आदि। अब बतला-

इये नारियों का गौरव कैसे रहेगा ?

गुरुदेव ने जरा मुसकराते हुए कहा-पर तुम लोग हो भी तो इसी लायक !

सुजाता इकदम चौंक पड़ी। क्षणभर गुरुदेव के मुँह की तरफ देखती रही। फिर गुरुदेव के चिहरे पर मुसकराहट देखकर बच्चो की तरह मिनमिनाते हुए बोली-हें गुरुदेव, आप भी ऐसी बात कहते है !

गुरुदेव ने फिर गम्भीर होकर कहा--बेटी, संसार में गौरव प्रायः दिया नहीं जाता, वह लिया जाता है और उसे सम्हालने की योग्यता प्राप्त करना पड़ती है।

सुजाता—पुराने ऋषि महर्षि और तीर्थंकर यदि स्त्रियों की ऐसी निन्दा कर गये या शास्त्रों ने लिख गये तो क्या इसकी जिम्मेदारी स्त्रियों पर है गुरुदेव ! इसके लिये वे क्या करें ? गौरव कैसे लेलें ?

गुरुदेव-इसकी जिम्मेदारी तो स्त्रीयों पर नहीं है। परन्तु इतनी निन्दा होने पर भी उन कथा पुराणों उपदेशों को सुनने के लिये ही जब स्त्रियाँ ही अधिक जाती हैं ऐसे धर्मों को मानने में जब उन्हें कोई शर्म नहीं मालूम होती, ऐसे धर्मगुरुओं कथाकारों उपदेशकों को दान सन्मान देने में जब स्त्रियाँ ही आगे है तब इसका अर्थ यह हुआ कि स्त्रियाँ इसी लायक हैं। अगर वे इस लायक न होतीं तो उन शास्त्रों का बहिष्कार करतीं, स्त्रीनिन्दकों को रोटी का टुकड़ा भी न देतीं, जिनधर्मों ने स्त्रियों का इस प्रकार अपमान किया है उनका त्याग कर देतीं। फिर किसी तीर्थंकर पैगम्बर ऋषि महर्षि पंडित की हिम्मत न पड़ती कि वह उनकी इस प्रकार निन्दा करता।

सुजाता थोड़ी देर को स्तब्ध होगई। फिर बोली-आप ठीक कहते है गुरुदेव ! जितनी इन बड़े आदमियों की शैतानियत स्त्रीनिन्दा मे कारण है उतनी स्त्रियों की हैवानियत भी स्त्रीनिन्दा

में कारण है। पर किया क्या जाय ? स्त्रियों की इस हैवानियत का कारण भी तो पुरुष ही है । उन्हीं ने बाल्यावस्था से ऐसे संस्कार स्त्रियों पर डाले है।

गुरुदेव—और स्त्रियों पर ऐसे कुसंस्कार डालनेवाले पुरुषों का निर्माण भी स्त्रियों ने किया है । तब पुरुषों का भी क्या दोष ? बेटी ! इस प्रकार अपनी भूलों की जिम्मेदारी परम्परा पर डाल देने से कोई भी मनुष्य अपना सुधार नहीं कर सकता । न अपराध करने पर भी अपराधी कहा जासकता है । क्योंकि वह कह सकता है कि उसके मां बाप ने जैसा उसे बनाया वैसा वह बना, इसमे उसका क्या कुसूर ?

सुजाता कुछ देर सोचती रही । फिर बोली-आपका कहना बहुत ठीक है गुरुदेव ! अपनी जिम्मेदारी दूसरों के सिर या परम्परा के सिर थोपकर कोई अपना सुधार नही कर सकता । स्त्रियों को स्वयं अपनी बुद्धि से अपनी भलाई का अपने गौरव का विचार करना चाहिये। पर समझमें नहीं आता कि परम्परा से स्त्रियों के विषय में जो हीन भावना चली आरही है उसका सामना कैसे किया जाय ? नारी को न्यायोचित गौरव कैसे प्राप्त हो ?

गुरुदेव—परिस्थिति अब इतनी सुधर गई है बेटी, कि इसके लिये अब विशेष संघर्ष की जरूरत नहीं है। बात को समझने की, उसके अनुसार व्यवहार करने की, और अपने विषय मे न्याय करने की जरूरत है। न्याय का मतलब यह कि न तो अपने विषयमे झूठा अहंकार आजाय, अहंकार से योग्य विनय शिष्टाचार कृतज्ञता आदि का नाश होजाता है इससे गौरव बढ़ता नहीं है घटता है, और न ऐसी हीनभावना रहने पाये जिससे अपने न्यायोचित गौरव का भान ही न रहे।

सुजाता-आपकी बात पूरी तरह जच रही है गुरुदेव ! फिर भी इसे व्यवहार में कैसे लायें इसके विषय में एक विधानसा आप बना दीजिये जिससे हमें अपनी भूलें सुधारने की और

कर्तव्य करने की नीति का पता लगे।

गुरुदेव—मै कुछ खास खास बातें ही बताऊंगा। बाकी तो उनसे जो दृष्टि प्राप्त होगी उससे स्वयं सब कर्तव्य सूझजायगा।

सुजाता-जरूर सूझ जायगा गुरुदेव! विचार में आत्म-निर्भर बनादेना आपकी नीति है।

गुरुदेव—यह ठीक है बेटी! ऐसी आत्मनिर्भरता के बिना मनुष्यता पर्याप्त मात्रा में प्रगट नहीं होती। खैर! आवश्यक सूच-नाएँ तुझे देदेता हूं।

१—जिनधर्मों ने, शास्त्रों ने गुरुओं ने उपदेशकों ने स्त्रियों की निन्दा की है, उन्हें नरक खानि आदि बताया है, मोक्ष आदि के धार्मिक अधिकार जिनने नहीं दिये हैं, पुरुपत्व के मद के कारण सामाजिक क्षेत्रमें नर नारी समभाव के जो विरोधी हैं, ऐसे धर्मों-शास्त्रों गुरुओं उपदेशकों का पूर्ण बहिष्कार किया जाय। ऐसे धर्मों को छोड़कर ऐसे युगधर्म को अपनाया जाय जो नर नारी समभाव का समर्थक हो। नारीनिन्दकों के उपदेश आदि न सुने जायँ, न उन्हें एक पाई की या रोटी के टुकड़े की भी मदद की जाय; कभी उनके उपदेश सुनने में आजायँ तो उनका विरोध किया जाय।

२-साधारण श्रेणी की नारियाँ तो घर में इतना काम करती है कि उनकी उपयोगिता उनके व्यक्तिगत गौरव को सुरक्षित रखती है परन्तु समृद्ध कुटुम्बों की नारियों को भी अपने सिर पर इतना भार उठा लेना चाहिये जिससे उनकी उपयोगिता काफी बढ़जाय तथा फुरसत के कारण मिलनेवाले समय तथा साधनों के द्वारा अपना बौद्धिक विकास भी बढ़ा लेना चाहिये जिससे उनके विषयमे सहज ही गौरव की भावना पैदा होजाय।

३—स्त्रियों मे भावुकता अधिक होती है। अमुक अंश में वह स्वाभाविक है परन्तु विवेक की भी मात्रा बढ़ाने की जरूरत है। भावुकता के कारण वे सहज ही ठगी जाती हैं और बार बार ठगी जाती है, गुण या उपकार की अपेक्षा रिश्तेदारी का मूल्यांकन

अधिक करती हैं इससे गौरव की दृष्टि से आर्थिक दृष्टि से काफी हानि होती है। तब कुटुम्ब में इस हानि का मूल्य उनका गौरव घटाकर वसूल किया जाता है। जो व्यक्ति भावुकता या अज्ञान के कारण अपने कुटुम्ब के हानि लाभ का ठीक वचिार न करेगा, दूरदर्शिता से काम न लेगा। उसका गौरव उतने अंश में जरूर घटेगा ।

सुजाता— जरूर घटेगा गुरुदेव ! पर नारी का कार्यक्षेत्र घर होने से उसे बाहरी दुनिया का अनुभव बहुत कम होता है ऐसी हालत में उससे ऐसी भूल होना स्वाभाविक है । तब वह क्या करे ?

गुरुदेव- जीविका के क्षेत्र में नारी का अनुभव कम होसकता है, जैसा कि गृह प्रबन्ध के क्षेत्र में पुरुप का अनुभव कम होता है, इसप्रकार अपने अपने कार्यक्षेत्र की दृष्टि से अनुभव की न्यूनाधिकता से गौरव में अन्तर नहीं आता, किन्तु रिश्तेदारी आदि के कारण बाहरी लोगों से जो सम्बन्ध आता है और उसमें विवेक की कमी से जो अनेक तरह के नुकसान होते हैं, परेशानियाँ होती हैं, उससे गौरव को धक्का लगता है। यह ध्यान में रखना चाहिये कि योग्यता के आधार पर ही अधिकार टिक सकता है । इसलिये नारी को कुछ विचारक बनने की जरूरत है। वह भावुकता के प्रवाह में न बहजाय, ठोकर खाकर वह जरूरी शिक्षा ले, धूर्तों और ढोंगियों के जाल से बचे, इसका कुछ विशेष ध्यान रखने की जरूरत है । इतना ज्ञान और इतना विचार उसमें आना ही चाहिये ।

४–चौथी बात दिलसे हीनता की भावना निकाल देने की है। नारी में खुद नारी को या नारीपक्ष को हीन समझने की भावना न होना चाहिये। भाई को वह तुच्छता की दृष्टि से देखे देवर को अधिक महत्व दे तो इससे नारी की हीनता प्रगट होती है। गुण के अनुसार, उपकार के अनुसार उम्र के अनुसार विनय

शिष्टाचार आदि से अन्तर पड़ना उचित है परन्तु नारीपक्ष या नर पक्ष के कारण व्यवहार में अन्तर न आना चाहिये।

सुजाता–जरूर न आना चाहिये गुरुदेव ! पर पीढ़ियों के कुसंस्कारवश नारी मे यह दीनता भी है। रिश्तेदारी में तो यह दीनता प्रगट होती ही है पर अगर कोई धर्म का भाई या पिता भी बनजाता है तो उसके विषयमे आदर घट जाता है अर्थात पतिपक्ष के लोगों, देवर बहिनोई ससुर आदि की अपेक्षा उसका दर्जा छोटा होजाता है। इसप्रकार किसी नारी को बहिन बेटी मानना एक तरह से गौरव का बलिदान सा होजाता है। आपकी यह सूचना बहुत महत्व की है गुरुदेव !

गुरुदेव–बस तो इतनी सूचनाएँ काफी हैं-हां ! एक सूचना यह भी है कि ५-वह अपना अबलापन कुछ कम करे ! यों स्त्री पुरुष की शरीर रचना मे जो अन्तर है और स्त्री के ऊपर सन्तान की जो विशेष जिम्मेदारी है उसके अनुसार कुछ निर्बलता तो रहेगी ही और उतने कारण से उसके गौरव को धक्का न लगेगा क्योंकि सन्तान विषयक अपनी विशेष सेवा के कारण दूसरी तरफ से उसको गौरव भी मिलना चाहिये पर इस स्वाभाविक परिस्थिति का ध्यान रखकर भी जो जरूरत से काफी ज्यादा अबलापन नारी मे आगया है उसमें कमी होना चाहिये। शारीरिक निर्बलता जितनी है वह रहे, परन्तु मानसिक निर्बलता जाना चाहिये। घर से बाहर निकलना ही कठिन होजाय, घूंघट पर्दा आदि की कुप्रथा के कारण छुई-मुई सरीखा जीवन होजाय, किसी से बात करने की भी हिम्मत न हो, थोड़ीसी अडचन में भी घबराहट आजाय इत्यादि निर्बलता जाना चाहिये। विनय नम्रता होना अच्छा है पर मानसिक दुर्बलता होना ठीक नही। बस ! इतनी सूचनाएँ काफी हैं।

सुजाता–काफी है गुरुदेव ! नारी के गौरव के लिये नारी को खुद प्रयत्न करना पड़ेगा। अंधे की आंख ठीक की जासकती है

पर चलना तो उसे अपने पैरों से ही होगा । उसकी आंख ठीक कर देना बहुत बड़ा उपकार है, जो आप करते है । पर आगे तो उसे ही करना पड़ेगा । जाती हूँ गुरुदेव ! आपके ये अमूल्य सन्देश जरूर नारियों में पहुँचाउंगी ।

यह कहकर प्रणाम करके सुजाता चली गई ।

सत्यभक्त
सत्याश्रम वर्धा

१० चन्नी ११९६१ इ. सं.
१२-१२-६१ उदयरात्रि २॥ बजे

१९—समाधि का आनन्द

उस दिन एक जिज्ञासु सज्जन आये और गुरुदेव को प्रणाम करके बोले-गुरुदेव ! भारतीय धार्मिक साहित्य में समाधि का उल्लेख बहुत आता है, शिव की समाधि मत्स्येन्द्र नाथ की समाधि आदि । इसमें अतिशयोक्ति होसकती है । दिनभर की समाधि को वर्षों की समाधि कहा जासकता है । पर उसका कुछ न कुछ रूप तो होना चाहिये । इधर मत्स्येन्द्रनाथ अपनी समाधि में लीन रहते है उधर एक रानी के साथ शादी कर लेते है, खूब विलासी जीवन बिताते है । आखिर यह सब है क्या ? समाधि में मनुष्य करता क्या है ? कुछ सोचता रहता है या बिलकुल जड़ होजाता है । कहने को यह भी कहा जाता है कि समाधि में बड़ा आनन्द है । कहते है कि ऐसा आनन्द इन्द्रादि को भी नहीं मिलता है । पर वह आनन्द क्या है ? जड़ता या विचारशून्यता से तो कोई बड़ा आनन्द नहीं मिल सकता । और कामसुख वहां है नही और मोक्ष सुख कुछ समझ में आता नही । आखिर समाधि है क्या ?

गुरुदेव-समाधि मोक्ष सुख प्रधान है । कामसुख के लिये बाहरी साधनो की जरूरत होती हैं । मोक्ष स्वावलम्बी मानसिक सुख है । समाधि में इसी का अनुभव किया जाता है । चित्त वृत्तियों का निरोध कर आनन्द का अनुभव किया जाता है ।

जिज्ञासु-सुख तो एक चित्तवृत्ति है। चित्तवृत्तियों का निरोध करने से सुख क्या मिलेगा ?

गुरुदेव-चित्तवृत्तिनिरोध का अर्थ चित्तवृत्ति का नाश नहीं है। किन्तु किसी एक विषय में इस प्रकार केन्द्रित करना है जिससे दुःख का अनुभव न होने पाये।

जिज्ञासु—पर दुःख का अनुभव न होना तो सुख नहीं है। वह एक प्रकार की जड़ता भी होसकती है। समाधि मे इसी-पर जोर रहता है।

गुरुदेव- हां ! बहुतसे दर्शनों ने इसी जड़ता की उपासना सुन्दर सुन्दर नामों से की है। वैशेषिक आदि दर्शनो ने तो मोक्ष मे सुख का अभाव ही मानलिया है। जैन दर्शन ने सुख का अभाव तो नही माना है पर दुःखाभाव से अधिक सुख का रूप भी कुछ नहीं बता पाया है। स लोग मोक्ष या समाधि के नाम-पर असफल और निरर्थक चेष्टा करते रहे हैं। मरने के बाद मिलने वाले जिस मोक्ष के लिये ये लोग जीवन बर्बाद करते रहे हैं उसका तो पता ही नहीं है। इतना ही नहीं, वह गणित और विश्वरचना आदि के अनुसार असंभव है, तर्क विरुद्ध है। वैदिक युग के बाद उपनिषद् युग से लेकर करीब तीन हजार वर्ष से इस देश में यह बीमारी है।

जिज्ञासु-तब तो समाधि या मोक्ष के नामपर सब ढोंग या पाखंड ही कहलाया गुरुदेव !

गुरुदेव-सब ढोंगी पाखंडी थे यह तो नहीं कहा जासकता किन्तु यही कहा जासकता है कि वे भ्रम के शिकार थे। हां ! मोक्षसुख का जो वास्तविक स्वरूप है वह ढोंग या पाखण्ड नहीं है। वह मन की एक अवस्था है। जिसमें बाह्य परिस्थिति की निरपेक्षता से मन में आनन्द लहराता रहता है।

जिज्ञासु- कैसा आनन्द ?

गुरुदेव-जैसा चाहिये वैसा, मनचाहा।

जिज्ञासु-शेख चिल्ली सरीखा ?

गुरुदेव-हां ! किसी तरह उसी से मिलता जुलता, परन्तु उसके दुष्परिणामों से मुक्त। शेख चिल्ली की तन्मयता भविष्य के ऐसे स्वप्नों में थी जिनने वर्तमान चौपट कर दिया, समाधि की तन्मयता ऐसी नहीं होती। वह तो वर्तमान के कष्टों को भुलाकर मानसिक जगत में इस प्रकार तल्लीन कर देती है कि उसका आनन्द तो आता है पर दुष्परिणाम नहीं होता। उसमें ऊंचे दर्जे की एक विचार धारा बहती रहती है। जैसे मानलो किसी व्यक्तिके प्रति अन्याय हुआ जिसका वह प्रतिकार न कर पाया। ऐसी अवस्था में उसने समाधि लगाली। समाधिमें उसने ईश्वरका साक्षात्कार किया। ईश्वरने उसे आश्वासन दिया। उसके साथ हुए अन्यायका बदला दिया। उसे निर्भय और सम्पन्न बनाया। इसप्रकार वह मानसिक जगत में ईश्वर का सहारा पाकर सारे कष्ट भूलगया और उसका हृदय आनन्द से भरगया। है तो यह भी शेख चिल्ली सरीखी बात, परन्तु वह इस ढंग से है कि उसका कोई दुष्परिणाम नहीं होने पाता, बल्कि समाधि के बाद उसका उल्लास बना रहता है।

जिज्ञासु—पर मत्स्येन्द्रनाथ वगैरह की समाधि का क्या मतलब, कि एक तरफ तो वे समाधि लगाये रहते हैं और दूसरी तरफ अपने मायामय शरीर द्वारा किसी रानी से विवाह करके मौज उड़ाने लगते हैं। क्या मनुष्य इसप्रकार अनेक शरीरों से एक साथ अनेक लीलाएँ कर सकता है ?

गुरुदेव-एक साथ अनेक शरीरों द्वारा अनेक लीलाएँ कोई नहीं कर सकता। पर मनुष्य की लालसाओं की सीमा नहीं। वह वास्तविक रूपमें तो उन्हें पूरा नहीं कर सकता पर निराधार कल्पनाओं को वास्तविकता का रूप दिया करता है। कुछ कल्पनाएँ तो ऐसी थीं जो उसके युग में निराधार और अशक्य होने पर भी कभी न कभी सम्भव थीं। जैसे आसमान में उडना, विमानों में उड़ना, सोते सोते दूर की यात्रा कर लेना, थोड़े समय में पृथ्वी का

चक्कर लगा लेना, लिंग परिवर्तन करना, दूर के दृश्य देखना आदि। पुराने जमाने में इन कल्पनाओं को वास्तविक रूप नहीं मिल सकता था, वह विज्ञान में बहुत पिछड़ा था, पर अपनी लालसाओं के कारण वह ऐसी कल्पनाएँ करता रहता था। धीरे धीरे विकास करते हुए उन कल्पनाओं को मूर्तिमन्त रूप दिया जासका। परन्तु कुछ कल्पनाएँ सर्वथा असम्भव थीं। जैसे एक आत्मा भिन्न भिन्न दो शरीरों में एक साथ कार्य करे। पुराने ग्रंथों मे अणिमा महिमा आदि सिद्धियाँ तथा विक्रिया आदि ऋद्धियों का जो वर्णन है वह ऐसा ही असम्भव वर्णन है। मत्स्येन्द्रनाथ आदि की समाधिओं के वर्णन भी इसी कोटि के हैं।

जिज्ञासु-ऐसी झूठी और असम्भव कल्पनाओ से लाभ ?

गुरुदेव-लाभ है आनन्द। "दुःख और सुख मन की माया"। बाहरी पदार्थ भी जो दुःख सुख देते हैं वे इसीलिये कि उनके सम्पर्क से मन पर प्रभाव न पड़े तो दुःख सुख कुछ न हो बेहोशी मे-क्लोरोफार्म सुंघाये जाने पर-असर नहीं पड़ता तो दुःख नहीं मालूम होता। और वस्तु के न होने पर भी यदि उस ढंग का प्रभाव मन पर डाल दिया जाय तो उसी के अनुसार सुख दुःख होने लगता है। सिनेमा मे आखिर क्या है ? पर्दे पर वे सब चीजें नहीं होती जो दिखती है, पर किसी वस्तु के दिखने पर जिसप्रकार की किरणें आंखपर पड़कर मस्तिष्क तक पहुँचती है, वैसी ही किरणें सिनेमा पट से आंखो तक पहुँचाने पर वस्तु के न होने पर भी वैसे ही दृश्य दिखाई देने लगते हैं और वैसा आनन्द आने लगता है। इसीप्रकार जब स्मृतियो या कल्पनाओ के आधार से मस्तिष्क पर प्रभाव डाला जाता है तब उससमय भी वैसे ही दृश्य दिखने लगते हैं और आनन्द आने लगता है। भले ही बाह्य जगत मे वह असम्भव हो, निराधार हो, न हो। मत्स्येन्द्रनाथ आदि के समाधि स्वप्न इसी ढंग के थे। बाह्य घटनाओं से उनका कोई ताल्लुक नहीं था, पर मानसिक जगत में पूरा संसार

बस जाता था। इसीलिये तो कहा है—

दुःख और सुख मन की माया।
मन ने ही संसार बसाया ॥

जिज्ञासु–तब क्या मनुष्य समाधि मे काम का भी आनन्द लेता है।

गुरुदेव–क्यों नहीं! काम कोई पाप नहीं है। जिस काम से दूसरों को कोई हानि नहीं, और भविष्य में अपनी भी कोई हानि नहीं, उसमें कोई पाप नहीं।

जिज्ञासु–मैंने एक श्लोक सुना था गुरुदेव!

संगम विरह विकल्पे, वरमिह विरहो न संगमस्तस्यः।
सगे सैव ममैका, विरहे खलु तन्मयम् भुवनम् ॥

इस तरह एक आशिक अपनी माशूक के बारे में सोचता है कि उसक मिलने की अपेक्षा उसका विरह अच्छा। क्योंकि मिलने पर सिर्फ वही मिलेगी और विरह में तो सारा संसार उसी के रूप में परिणत होजायगा। सभी जगह वही वही दिखाई देगी। तो इस प्रकार के आशिक में और समाधिस्थ व्यक्ति में क्या अन्तर रहा?

गुरुदेव—वह आशिक किसी खास माशूका के मोह में फसा है। इसमे वह कर्तव्य भ्रष्ट तक होगया है। अपनी वासना की पूर्ति के लिये वह अनुचित कार्य भी कर सकता है। माशूक की इच्छा अनिच्छा की उसे पर्वाह नहीं है। इस प्रकार वह अपनी भी हानि करता है और दूसरों को भी हानि करता है। समाधिस्थ व्यक्ति किसी खास माशूक, या किसी का खास वैभव आदि नहीं चाहता। वह जो चाहता है वह सब उसी के मनका निर्माण होता है।

जिज्ञासु—हां! यह अन्तर तो है और यह काफी बड़ा अन्तर है। फिर भी कामुकता और समाधि का मेल जरा विचित्रसा मालूम होता है।

गुरुदेव—हां! मालूम तो होता है, क्योंकि काम को पुरु-

षार्थ में गिनकर भी उसकी पुरुषार्थता को लोग भूल गये हैं। और निवृत्तिवादी लोगो ने तो उसे पापमें ही गिन दिया है। परन्तु जो विवेकी है वे समझते हैं कि जो काम स्वपर कल्याण के विरुद्ध नहीं है उससे पाप नही है। समाधिस्थ का काम ऐसा ही होता है।

जिज्ञासु—यह बात तो बिलकुल ठीक है गुरुदेव ! पर आश्चर्य है इतनी साफ बात पुराने शास्त्रकारों ने स्पष्ट क्यां नहीं की !

गुरुदेव— बहुत साफ शब्दों मे बात नहीं कही फिर भी बहुत कुछ इशारे तो कर ही दी है। मत्स्येन्द्रनाथ की माया सब मन की ही माया है। जैनशास्त्रों ने भी इस बात का संकेत किया है। उनके अनुसार मानव विकास को जो चौदह श्रेणियाँ (गुणस्थान) हैं उनमें आठवें गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक समाधि की अवस्था है। बाद में वह योगी या अर्हत् होजाता है। इन गुणस्थानो में आठवें और नवमे गुणस्थानों में काम वासना अर्थात् स्त्री के साथ सम्भोग की इच्छा, या पुरुष के साथ सम्भोग की इच्छा या दोनों के साथ सम्भोग की इच्छा रहती है। यह बात जरूर है कि नवमे गुणस्थान के बाद यह काम वासना नहीं रहती। अर्थात् दूसरे विषयों में मन रमता है। इस तरह काम का अभाव नहीं रहता।

जिज्ञासु- बहुत ठीक स्पष्टीकरण हुआ गुरुदेव ! पर समाधि के इस आनन्द को इन्द्रादि के आनन्द से भी अधिक क्यों कहा ?

गुरुदेव—बात यह है कि शारीरिक भोग बहुत सीमित होता है। वह थोड़ी ही देर मे समाप्त होजाता है और इच्छानुरुप श्रेष्ठ भी नहीं होता पर मानसिक भोग काफी लम्बे सयय तक रह सकता है। इच्छानुरूप श्रेष्ठ भी होता है इसलिये समाधिस्थ सुख या भोग की बराबरी दूसरा नही कर सकता। वह विविध भी होता है। भक्ति मैत्री वात्सल्य करुणा तथा विविध इन्द्रिय विषयों का भोग आदि सब तरह का होता है। इस प्रकार समाधि का

सुख असीम, स्वतंत्र, और श्रेष्ठ होता है।

जिज्ञासु-बात पूरी तरह समझ में आगई गुरुदेव ! साथ ही यह भी समझ गया कि यह अकर्मण्यता रूप नही है ।

गुरुदेव-नहीं, समाधि सब तरह की होसकती है । कर्म समाधि को अकर्मण्यता नहीं कह सकते । क्योंकि उसमें कर्तव्य की योजना के विचार में लीनता रहती है। भोग समाधि को कर्मण्यता नहीं कह सकते क्योंकि उसमें कर्म की योजना नहीं भोग की ही योजना है। हालां कि यह पाप नहीं है । पाप समाधि भी होती है। जिसमें कुकर्म की योजना और दुर्भोगों में चित्त रम रहा हो वह पाप समाधि है। मतलब यह कि समाधि एक मानसिक संसार है। जो पुण्य या पाप दोनों से भरा है। हां ! चूं कि वह अपनी ही सृष्टि है इसलिये एक तरह का आनन्द उसमें भरा रहता है समाधि कोई अलौकिक चमत्कार नहीं है किन्तु शारीरिक परिस्थिति को गौण कर मानसिक सृष्टि में रमजाना है ।

जिज्ञासु—मतलब यह कि समाधि मोक्षमय काम की अवस्था है।

गुरुदेव—बहुत ठीक समझा तुमने ।

जिज्ञासु प्रणाम करके चलागया ।

९ सत्येशा ११९६२ — सत्यभक्त
५-१-६२ — सत्याश्रम वर्धा

(२०)—पड़ौसी से बेगार—

देवेन्द्रनाथ गुरुदेव के पास कभी कभी, महीनों मे एकाधबार, ही आया करते थे। और जब आते थे तब किसी न किसी की शिकायत लेकर। आज जब वे आये तब गुरुदेव समझगये कि कोई न कोई शिकायत लेकर आये होंगे। इसलिये गुरुदेव ने स्वयं पूछलिया कि कहो भाई ! आज क्या परेशानी है ?

देवेन्द्र ने कहा—परेशानी क्या बताऊं गुरुदेव ! आप जो

बात कहते हैं उसीका पद पद पर अनुभव हुआ करता है। आप कहते हैं कि लड़ाई में तो सिर्फ दो मोर्चे रहते हैं। वहां विरोधी मोर्चे से तो हमें डर रहता है पर अपने मोर्चों से सदा सहयोग मिलता है। लेकिन समाज मे तो जितने घर हैं उतने ही मोर्चे रहते हैं। कोई किसी के काम नहीं आता है, सभी से डर लगा रहता है।

गुरुदेव—हां! सचमुच अभी तक सामाजिकता का इतना विकास नहीं होपाया है कि समाज में कौटुम्बिकता आजाय, विश्वास प्रेम सेवा सहयोग की वृत्ति जगजाय। इसी दुर्दशा का चित्रण करने के लिये मैं यह बात कहा करता हूं। मैं चाहता हूँ कि समाज की यह दुर्दशा दूर होजाय। लोग एक दूसरे के काम आयें, सेवा का आदान प्रदान इस प्रकार करें कि न तो कोई किसीपर बोझ बने, न कोई किसी से वेगार लेले। सब एक दूसरे के प्रति उदार रहें। पर दुर्भाग्य से ऐसा हो नहीं पारहा है।

देवेन्द्र-साधारण लोगों की तो बात जाने दीजिये गुरुदेव, पर जो समझदार कहलाते हैं उनमें भी यह उदारता नहीं देखी जाती। इससे बड़ा दर्द होता है।

गुरुदेव- इस विषयमें किसे समझदार कहा जाय, यही कहना कठिन है। यह बीमारी व्यापक है। फिर भी सुनूं तो कि इस विषयमें तुम्हें क्या कडुआ अनुभव हुआ है।

देवेन्द्र-बात तो छोटीसी है गुरुदेव! छोटीसी बात पर किसीपर क्या दोषारोपण किया जाय। बात यह है कि मेरी पत्नी गर्भवती है। उसे दोहला हुआ है कि मित्रों सम्बन्धियो आदिको लेकर नौका विहार करूं। पर एक हफ्ता होगया है कोई पड़ौसी इसके लिये तैयार नहीं होता। मै सब से प्रार्थना कर चुका हूं। पर सभी कहते हैं कि हमें फुरसत नही है।

गुरुदेव-हां! वर्षाऋतु है इसलिये शायद लोग तैयार नहीं होते होंगे।

देवेन्द्र-पर क्या मेरे पत्नी के दोहले का विचार पड़ौसियों को न करना चाहिये ?

गुरुदेव-करना तो चाहिये। कुछ परेशानी भले ही हो, पर इतना सहयोग तो करना चाहिये।

इतने में आये सत्यप्रसाद। उन्हें देखकर गुरुदेव ने कहा-ये भी तो तुम्हारे पड़ौस में रहते हैं तुमने इन से क्यों न कहा ?

देवेन्द्र ने कहा-इनसे भी कहा था गुरुदेव ! पर ये भी मेरी पत्नी का दोहला पूरा करने के लिये नौका विहार को तैयार न हुए। बोले नौका विहार से मैं ऊब गया हुआ हूँ। अब नौका विहार की बिलकुल इच्छा नहीं होती।

गुरुदेव-क्यों सत्यप्रसाद जी ! क्या कारण है कि पड़ौस में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो इनकी पत्नी के दोहले को पूरा करने में मदद करदे। एक दिन पड़ौसी के लिये बेगार ही सही।

सत्यप्रसाद-बेगार में तो आदमी अपना समय ही देता है पर इनकी बेगार में समय के साथ पैसा भी खर्च करना पड़ता है। नौका विहार का अर्थ होता वर्षा में परेशानी उठाओ। अरुचिकर कार्य में समय भी गुमाओ और पैसा भी खर्च करो।

गुरुदेव-पैसा खर्च करने की क्या बात थी ? नौका विहार का खर्च क्या ये आप से लेते ? आप तो इतना समय देदेते तो काफी था।

सत्यप्रसाद—न था गुरुदेव ! इस विषयमें पिछले अनुभव कुछ और हैं। इन को बुरा न लगे तो कहूं।

गुरुदेव—इसमें बुरा लगने की क्या बात है। कुछ भूल होगी हो तो सुधर ही जायगी।

सत्यप्रसाद- तो सुनिये ! जब ये शुरु शुरु में मेरे पड़ौस में रहने आये तब यथाशक्य सहयोग मैंने इन से किया। एक तरह से कौटुम्बिकता निभाई। एक दिन ये आये, बोले--इस शहर में मैं नया नया हूँ मेरी पत्नी की इच्छा शहर घूमने की है। आप साथ

रहकर घुमादें तो बड़ी कृपा हो। मैंने कहा फिर कभी घुमा दूंगा। अब छुट्टी और फुरसत होगी। पर ये तो अड़ ही गये। वर्षों से इस शहर मे रहने के कारण मुझे तो शहर घुमने में जरा भी रुचि न थी परन्तु इनके बहुत आग्रह के कारण मैंने उस दिन की छुट्टी ली और इन्हें शहर घुमाने की वेगार की। इतना ही नही ट्राम का किराया भी मैंने दिया। हां! बाद मे इनने अपना किराया मुझे दे दिया। और मेरा किराया मुझे ही सहन करना पड़ा।

गुरुदेव ने आश्चर्य से कहा—अच्छा!

सत्यप्रसाद ने कहा—इसके बाद मैं इनकी वेगारों से बचने लगा। पर एक बार ये फिर आये बोले मेरी पत्नी गर्भवती है। उसे दोहला हुआ है कि कुछ मित्रों के साथ बागमे विहार करूं! सो आप दोनों बाग में चलने की कृपा कीजिये। मैंने कहा—मै तो काम मे बहुत व्यस्त हूँ। मेरी पत्नी ने कहा–जहां बहुत भीड़ होती है वहां मुझे अच्छा नहीं लगता। फिर मुझे रोटी बनाना है। वहां से लौटते लौटते शाम होजायगी फिर मै रोटी कब बनाऊंगी। रात्रिमे हम लोग खाते नहीं। इन ने कहा- शाम के भोजन की आप चिन्ता न कीजिये। भोजन मेरे यहां तैयार है। आज शामका भोजन आप दोनो मेरे यहां ही करें। मेरी पत्नी ने कहा–नहीं, मुझे यह पसन्द नहीं है। आप इन्हें अकेले लेजाइये, मै घर पर रहूंगी और भोजन तैयार करलूंगी इनने उलहने के स्वर में कहा- आपको एक दिन मेरे यहां भोजन करने में भी इतराज है! इसप्रकार इनने भोजन के लिये तथा साथ चलने के लिये बड़ा आग्रह किया। हम लोग गये। पर उस दिन भी हमे अपना खर्च लगाना पड़ा। इतना ही नहीं, उस दिन रातभर भूखा भी रहना पड़ा। क्योंकि इनने शाम के भोजन के लिये पूछा भी नहीं। यहां तक कि मेरी पत्नी इनके यहां यह देखने के लिये गई कि भोजन की कुछ तैयारी है या नहीं, पर इन दोनों ने भोजन के बारेमे कुछ बात भी नहो की। शाम होगई थी इसलिये भोजन तो

हम बना नहीं सके, कुछ थोड़ासा दूध लाये, वही पीकर सोगये, फिर भी दूध से भूख तो न बुझसकी। तब से इनसे किसी तरह का सम्बन्ध न रखने का ही निर्णय मैंने कर लिया।

गुरुदेव-यह तो बड़े आश्चर्य की बात है। अगर आप देवेन्द्र जी के मुँह पर ही यह बात न कहते तो मुझे विश्वास ही न होता। ऐसा क्यों हुआ देवेन्द्र जी।

देवेन्द्र— मैंने तो काम निकालने के लिये बात बानादी थी। भोजन की कोई तैयारी मेरे यहां थी ही नहीं। शिष्टाचार से यों ही कहदिया था।

गुरुदेव- शिष्टाचार का अर्थ मिथ्याचार या अशिष्टाचार तो नहीं है। अब व्यवहार में आपकी बात पर कौन विश्वास करेगा।

देवेन्द्र-कोई विश्वास नहीं करता गुरुदेव !

गुरुदेव-कैसे करे ? और क्यों करें ? आपके शब्दों पर विश्वास करने का अर्थ रातभर भूखो रहना हो, आपको सहयोग करने का अर्थ यदि समय की बर्बादी के साथ धन की बर्बादी भी हो तो कौन सहयोग करेगा !

देवेन्द्र-पर क्या पिकनिक का बोझ एक ही आदमी पर डालना उचित है ?

गुरुदेव—पिकनिक की दृष्टि से जहां कुछ साथी सहमत होजायँ और आनन्द लूटने के लिये मिलजुलकर यात्रा करें वहां सब को अपना अपना खर्च उठालेना चाहिये। पर जहां कोई साथी पिकनिक की दृष्टि से न जाय, उसे उसको जरूरत ही न हो, बल्कि अरुचिकर हो सिर्फ तुम्हारी सेवा करने के लिये ही उसे समय खर्च करना हो वहां उसपर खर्च लादना उसे धोखा देना है। कोई अपने काम से किसी को अपने साथ लेजाय तो उसके खर्च का बोझ लेजाने वाले को उठाना चाहिये। या आर्थिक मामले में स्पष्टिकरण कर लेना चाहिये। अच्छा देवेन्द्र जी ! कभी आपने

इस तरह दूसरे के लिये समय दिया है ? अपना पैसा खर्च किया है ?

देवेन्द्र चुप रहे।

गुरुदेव ने कहा-देवेन्द्र जी ! कौटुम्बिकता का बीज बोओगे तो कौटुम्बिकता का फल काटोगे। बिना बोये फसल नहीं काटी जासकती।

देवेन्द्र-व्यवहार के ज्ञान में मुझसे कुछ भूल होती है गुरुदेव ! आप कुछ नियम बतादीजिये ! जिनका मैं पालन करूं।

गुरुदेव-एक ही नियम है इसका देवेन्द्र, कि किसी का अहसान सिर पर न लादो। अगर कभी जरूरत होजाय तो दूसरे समय किसी न किसी तरीके से उसकी कुछ भरपाई करदो और कुछ अधिक कर दो। तुम्हारे लिये किसी ने चार पैसे खर्च किये तो बदले में उसके लिये पांच पैसे खर्च करो। समय और श्रम के बदले में भी इसका ध्यान रक्खो। दूसरी बात यह है कि विश्वास-घात न करो। शाम के भोजन का निमंत्रण देकर भोजन कराने से किनाराकशी करजाना किसी को परेशान और दुखी करना तो है ही, साथ ही उसका घोर अपमान भी है। ऐसे अवसर पर भूल-जाना भी भयंकर अपराध है। फिर जानबूझकर टालना तो अक्ष-न्तव्य है।

देवेन्द्र--सचमुच मै क्षमा का भी पात्र नहीं हूं। फिर भी मै क्षमा मांगता हूँ। जिससे मेरे जीवन की धारा बदले !

गुरुदेव-जीवन की धारा बदल जायगी तो क्षमा मिल ही जायगी।

२८ धामा ११९६२ इ. सं.
१७-६-६२

सत्यभक्त
सत्याश्रम वर्धा

२१—परस्परावलम्बन

गुरुदेव के चरण छूकर जब लक्ष्मी एक तरफ बैठ गई तब उसके चेहरे पर चिन्ता की रेखाएँ साफ उभर रही थीं। गुरुदेव ने पूछा-तुम्हारा जीवन तो सब तरह साधन सम्पन्न है लक्ष्मी, फिर आज इतनी चिन्ता किस बात की है ? तुम्हारा पति, जहां तक बनता है तुम्हें कोई कष्ट नहीं देता, काम का बोझ भी नहीं डालता, खुद बहुतसा काम कर लेता है।

लक्ष्मी-यही तो दुःख है गुरुदेव ! उन्हें मेरी जरूरत ही नही मालूम होती। वे पद पद पर कह देते है-मै सब करलूंगा, तुम्हारी जरूरत नहीं है। सोचती हूँ जब मेरी जरूरत ही नहीं, तब इस भारभूत जिन्दगी को लेकर क्या करूं !

गुरुदेव-तुम्हें उनकी जरूरत मालूम होती है कि नहीं ?

लक्ष्मी-मुझे तो मालूम होती है। बहुत से काम मिलजुलकर करने को जी चाहता है। पर किस मुँह से कहूं ! जब उन्हें मेरी जरूरत ही नहीं मालूम होती तब मै पद पद पर अपनी जरूरत कैसे बताऊं ! फल यह है कि जहां तक बनता है मैं भी किसी काम मे उनसे सहयोग नहीं लेती। बाजार का काम भी खुद ही कर लेती हूं।

गुरुदेव ने जरा विनोदी स्वर में कहा-अच्छा तो है, जितना स्वावलम्बी जीवन बिताया जाय अच्छा।

लक्ष्मी—पर इस स्वावलम्बन ने तो दम घुटाऊ वातावरण निर्माण कर दिया है गुरुदेव ! दिन रात मेरा दम घुटता रहता है।

इतने में आये ज्ञाननाथ, लक्ष्मी के पति। लक्ष्मी का पिछला वाक्य उनके कान में पड़गया, इसलिये आते ही बोले-किस कारण से दम घुटता रहता है तुम्हारा !

लक्ष्मी ने कहा-आपके स्वावलम्बन के कारण।

ज्ञाननाथ—स्वावलम्बन ! स्वावलम्बन तो एक असाधारण

तथा उपयोगी गुण है उसके कारण किसी का दम क्यों घुटना चाहिये ?

लक्ष्मी—जिसके कारण किसी के जीवन की उपयोगिता ही न रहे, जीवन निरुपयोगी होने से भारभूत मालूम होने लगे उससे दम न घुटेगा तो क्या होगा ?

ज्ञाननाथ अचरज से ताकते ही रहगये। फिर गुरुदेव से बोले-लक्ष्मी देवी क्या कह रही है गुरुदेव, मुझे समझ में नहीं आता। क्या ये ठीक कह रही हैं गुरुदेव ?

गुरुदेव ने सीधे शब्दों में जवाब न देकर ज्ञाननाथ से पूछा-पुरुष का पुरुष से और स्त्री का स्त्री से विवाह क्यों नहीं होता ज्ञाननाथ ?

ज्ञाननाथ को हँसी आगई। बोले-यह खूब कहा गुरुदेव आपने, पुरुष का पुरुष से और स्त्री का स्त्री से विवाह होने से क्या होगा। स्त्री पुरुष परस्पर पूरक है इसलिये दोनों मिलकर एक बनते है, पुरुष पुरुष या स्त्री स्त्री तो इस प्रकार परस्पर पूरक नहीं बन सकते फिर उनके विवाह का क्या अर्थ।

गुरुदेव—परस्पर पूरकता तो परस्पर अपेक्षा पर निर्भर है। यदि अतिस्वावलम्बन के कारण वह परस्पर अपेक्षा शून्य सरीखी होजाय तो परस्पर पूरकता किस आधार पर टिकेगी ! और जब परस्पर पूरकता घट जायगी या खत्म होजायगी तब वैवाहिक जीवन की एकता का कैसे अनुभव होगा !

ज्ञाननाथ-नहीं होगा गुरुदेव ! परन्तु स्वावलम्बन क्या बुरी चीज है ?

गुरुदेव—स्वावलम्बन महान गुण है, परन्तु संसार स्वावलम्बन पर नहीं परस्परावलम्बन पर टिका हुआ है। एक दिन मनुष्य घर मे स्वावलम्बी होता था। अपने लिये अन्न पैदा कर लिया, चरखा कातकर कपड़े बनालिये, घासफूस से झोपड़ी बनाली। बस, जीवन को जरूरतें पूरी होगईं। न हमारी किसी को जरूरत, न

किसीकी हमें जरूरत । यह स्वावलम्बी जंगली जीवन हजारों वर्ष तक मनुष्य ने बिताया । न वह बढ़िया कपड़े बना सका न बढ़िया भवन, न बढ़िया सड़कें या न वर्तन आदि । स्वावलम्बी कुटुम्ब इन सब कामों मे चतुर हो हो नहीं सकता था । उसे सब काम करना पड़ते थे इसलिये वह किसी काम में चतुर न हो पाता था । परन्तु जब वह परस्परावलम्बी बना. एक कुटुम्ब दूसरे के लिये काम करने लगा सेवा का आदान प्रदान करने लगा, तब किसी न किसी विषयमें निष्णात होने लगा इसलिये आर्थिक विकास हुआ, साथ ही सेवा के आदान प्रदान से सामाजिकता कौटुम्बिकता या एकता भी बढ़ी । हजारों वर्ष पुराने जंगली जीवन की अपेक्षा हम जो आज उपग्रह युग में आगये है, और स्वर्ग की कल्पना हमारी वास्तविकता के आगे फीकी पड़गई है वह सब मनुष्य के परस्परा-वलम्बन का परिणाम है । हर आदमी या हर कुटुम्ब पूर्ण स्वाव-लम्बी बना रहता तो जंगली युग से बाहर न निकल पाता । समाज के विकास तथा संगठन के लिये जैसे परस्परावलम्बन जरूरी है उसी तरह कुटुम्ब के विकास के लिये भी पति पत्नी में परस्पराव-लम्बन जरूरी है ।

इसके बिना श्रम और चिन्ताओं का बोझ ही बढ़ेगा, मनुष्य सुखी न होगा, यहां तक कि प्रेम का आधार भी समाप्त होजायगा ।

ज्ञाननाथ—सो तो होरहा है गुरुदेव ! लक्ष्मी देवी के उद्‌गारों से भी यह बात मालूम होती है । परन्तु यह समझ में नहीं आया गुरुदेव कि स्वावलम्बी मनुष्य जब दूसरों को कम कष्ट देता हैं तब उससे दुःख क्यों बढ़ता है ?

गुरुदेव—दूसरों को कम कष्ट देना साधारणतः अच्छी बात है परन्तु जो आदमी दूसरों से सेवा लेता नहीं है उससे दूसरा सेवा कैसे ले ? इसप्रकार या तो वह सेवा से वंचित रहकर दुखी होगा, या मुफ्त में सेवा लेकर अपना गौरव खोयेगा ! गौरव-

हीनता भी एक बड़ा दुःख ही है।

ज्ञाननाथ—तब तो इसका यह अर्थ हुआ गुरुदेव कि नारियों को खूब जोतने से घर में आनन्द बढ़ेगा ? पर क्या यह न्याय है ?

गुरुदेव—जहां कोई किसी को खूब जोतेगा वहां न आनन्द बढ़ेगा न न्याय होगा। किसी को खूब जोतने की नहीं. परन्तु एक दूसरे के लिये जुतने की जरूरत है। परस्पर सेवा का जितना अधिक आदान प्रदान होगा, एक दूसरे के लिये जितना अधिक जरूरी बनेगा उतना ही प्रेम बढ़ेगा। हां ! यह बात जरूर है कि सेवा देने का हम जितना अधिक अनुभव करते हैं सेवा लेने का अनुभव उससे अधिक करना चाहिये। और वह अनुभव शब्द से या व्यवहार से प्रगट भी होना चाहिये। पति पत्नी के लिये अधिक से अधिक करे और पत्नी कृतज्ञता प्रगट करे और पत्नी पति के लिये अधिक से अधिक करे और पति कृतज्ञता प्रगट करे इसमें जो एकता है, प्रेम है. वह महान आनन्द है।

ज्ञाननाथ—आपकी बात पूरी तरह जचगई गुरुदेव। परन्तु स्वावलम्बन भी एक गुण है और उसके बिना भी मनुष्य को परेशानियाँ और संकट बढ़ जाते है। तब स्वावलम्बन के बिना कैसे काम चल सकता है ?

गुरुदेव—मनुष्य को योग्यता की दृष्टि में अधिक से अधिक स्वावलम्बी होना चाहिये। जहां दूसरा आदमी असमर्थ हो या दूसरा आदमी हो ही नहीं, या वह सहयोग करने को तैयार न हो, वहां स्वावलम्बी वृत्ति से अधिक से अधिक काम करना चाहिये। पराधीनता अच्छी नहीं है, असमर्थता भी अच्छी नहीं है परन्तु इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि हर आदमी अपनी शक्ति का उपयोग करके अपने जीवन को उपयोगी बना सके, गौरव का अनुभव कर सके, कृतज्ञता प्राप्त कर प्रेम का अनुभव कर सके।

ज्ञाननाथ—अब अपनी भूल समझता हूँ गुरुदेव, लक्ष्मी

देवी से समय समयपर यह कहता रहा हूँ कि "मै सब कर लूंगा तुम्हारी जरूरत नहीं है"। सचमुच इससे इनका बड़ा अपमान हुआ है। मुझे आशा है लक्ष्मी देवी मुझे क्षमा करेंगी।

लक्ष्मी की आंखो में आंसू आगये। उसने रुंधे गले से कहा-इसमे क्षमा की बात नहीं है गुरुदेव ! मैं तो सिर्फ इतना चाहती हूं कि मेरे तन मन का उपयोग इनके लिये अधिक से अधिक हो जिससे मेरा जीवन सार्थक बने, मैं इनके लिये भार न बनजाऊं। अधिक से अधिक सहयोग से जीवन में पूर्णता का अनुभव कर सकूं।

गुरुदेव- बस ! अब सब ठीक होगया। तुम लोग ये बातें याद रक्खो कि स्वावलम्बन अच्छा गुण है, पर अतिस्वावलम्बन से बचना चाहिये और परस्परावलम्बन का अधिक से अधिक उपयोग करके कृतज्ञतामय प्रेममय जीवन बनाना चाहिये।

१२ बुधी ११९६२ इ. सं. — सत्यभक्त
ता. ३०-६-६२ — मसूरी (प्रवास मे)

२२—अतिवितृष्ण

उस दिन कृष्णकान्त गुरुदेव से मिलाने के लिये काफी ऊंचे दर्जे के एक सज्जन को लाये। कृष्णकान्त ने परिचय देते हुए कहा-इनका नाम विरागी है और ये अपने नाम के अनुरूप वीरागी ही है। जीवन मे सब से बड़ी तृष्णा तो नाम और प्रतीष्ठा की होती है। पर इनने इस सब से बड़ी तृष्णा को पूरी तरह जीत लिया है। न इन्हें नाम की इच्छा है न यह कि इन्हें लोग बड़ा समझें इनकी तारीफ करें। मैने आपका जिक्र किया और प्रेरणा दी इसलिये ये आपके दर्शन के लिये आये हैं।

गुरुदेव ने कहा-अच्छा किया कृष्णकान्त सचमुच यश प्रतिष्ठा की योग्यता रखकर उसकी इच्छा न रखना मनपर बहुत बड़ी भारी विजय है। ऐसे व्यक्ति बहुत असाधारण है।

कृष्णकांत ने विरागी जी की और भी तारीफ करते हुए कहा–बहुत से लोग ऐसे होते है गुरुदेव कि सदा यही कहा करते हैं कि मुझे नाम की इच्छा नहीं है प्रतिष्ठा की इच्छा नहीं है। नाम प्रतिष्ठा से भागने का ढोंग भी खूब करते है पर प्रच्छन्न रहकर नाम प्रतिष्ठा, लूटने की कोशिश भी खूब करते हैं। पर विरागी जी ऐसे नहीं हैं।

गुरुदेव– हां ! ऐसे लोगो की कमी नहीं हैं जिनके बारे में कहा जासकता है—

भगने का तो ढोंग है, भीतर मन ललचाय।

बार बार मुँह फेरकर, मानो नटी रिझाय ॥ (१५५)

ऐसे लोग बड़े नाम प्रतिष्ठा लोलुप होते है। पर साथ में विशेषता यह होती है कि इसके लिये वे काफी दम्भ करते हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि विरागी जी मे यह दम्भ भी नहीं है और नाम-प्रतिष्ठा की लोलुपता भी नहीं है।

विरागी— मैं सोचता हूं गुरुदेव, कि आखिर नाम प्रतिष्ठा में स्वाद क्या है ? उससे पेट तो भरता नहीं है। सिर्फ मन की एक निरर्थक कल्पना है। मनुष्य को छोडकर और किसी भी प्राणी मे ऐसी निरर्थक कल्पना नहीं पाई जाती।

गुरुदेव– यह तो उच्च श्रेणी का मानसिक सुख है, पशु-पक्षियो का इतना विकास ही नहीं हुआ है कि वे इस सुख का स्वाद चख सकें। वे तो सामान्य इन्द्रियों के द्वारा ही सुख का स्वाद चख सकते हैं।

विरागी– तो क्या यश प्रतिष्ठा का सुख उच्च श्रेणी का सुख है ?

गुरुदेव–अन्य इन्द्रियोंकी अपेक्षा मानसिक सुख उच्च श्रेणीका तो होता ही है। मानसिक सुखकी विशेषता यह है कि इसमें दूसरोंको विशेष कुछ खर्च नहीं करना पड़ता और अपने को काफी स्थायी सुख मिल जाता है अच्छा खाना अच्छा पहरना आदि इन्द्रिय सुखकेलिये दूसरेको

श्रम करना पड़ता है और उस सामग्रीसे उन्हें वञ्चित रहना पड़ता है परन्तु नाम प्रतिष्ठा के सुख के लिये दूसरों को विशेष खर्च नहीं करना पड़ता और आनन्द भरपूर मिल जाता है।

विरागी- इसका तो मतलब यह कि साधारण इन्द्रिय सुख की अपेक्षा नाम प्रतिष्ठा का सुख काफी ऊंचे दर्जे का है।

गुरुदेव-ऊंचा तो है ही, साथ ही समाज की सुखसमृद्धि के लिये जरूरी भी है।

विरागी- जरूरी है! जरूरी कैसा ?

गुरुदेव- समाज की सुख समृद्धि तभी होती है जब मनुष्य एक दूसरे के लिये काम करते है। और साधारणतः मनुष्य काम तभी करता है जब उसे काम के बदलेमें कुछ मिले। बदले में दो ही चीजें मिल सकती है एक तो धन दूसरी नामप्रतिष्ठा। धन तो हर एक मनुष्य के पास होता नहीं, और होता भी है तो उसके खर्च कर देने पर वह एक तरह से गरीब होजाता है पर किसी को यश प्रतिष्टा देने में मनुष्य का ऐसा कुछ खर्च नहीं होता कि जिससे वह गरीब होजाय और विनिमय का आधार टूट जाय। नाम प्रतिष्ठा चाहने वाले ऐसी चीज चाहते हैं जो उन्हें तो आनन्दित कर देती है पर समाज का उसमें कुछ खर्च नहीं होता, दूसरों की गरीबी नही बढ़ती।

विरागी—इसका तो यह मतलब हुआ गुरुदेव, कि नाम-प्रतिष्ठा की लोलुपता बुरी चीज नहीं है।

गुरुदेव--नाम प्रतिष्ठा तो बुरी चीज नहीं है पर नाम प्रतिष्ठा की लोलुपता बुरी चीज है। क्योंकि लोलुप व्यक्ति उचित अनुचित की पर्वाह नहीं करता। वह दम्भ छल आदि से भी नाम प्रतिष्ठा लूटने लगता है। वह जनरुचि का तो ध्यान रख लेता है पर जनसेवा का ध्यान नहीं रखपाता। इसलिये वह सत्य नही दे पाता, गुमराहों को राह पर नहीं लापाता, समाज की वास्तविक आवश्यकता का विचार नहीं कर पाता, और चापलूसों के चक्कर

में भी आजाता है। इसलिये लोलुपता से बचना चाहिये।

विरागी- परन्तु जो व्यक्ति नाम प्रतिष्ठा के विषय में बिलकुल उदासीन है, उसे आप क्या कहेंगे ?

गुरुदेव-सवाल कहने का नहीं होने का है। वह अच्छा भी होसकता है और बुरा भी होसकता है।

विरागी-अच्छा कैसा और बुरा कैसा ?

गुरुदेव-अच्छा वह जो काम तो अधिक से अधिक करे पर बदला किसी रूप में न ले। न धन पैसे के रूपमे न नाम-प्रतिष्ठा के रूप में, इसप्रकार पूर्ण निस्वार्थसेवी कर्मण्य व्यक्ति अच्छा है। किन्तु जो यह सोचता है कि न तो मुझे किसी से धन चाहिये न नाम प्रतिष्ठा चाहिये तब मैं काम क्यों करूं। दुनिया कहीं भी जाय मुझे इससे क्या ? इसप्रकार दुनिया की सेवा से बिलकुल उदासीन व्यक्ति बुरा है। उससे अच्छा वह है जो धन लेकर सेवा करता है, और उससे अच्छा वह है जो नामप्रतिष्ठा लेकर सेवा करता है, और सब से अच्छा वह है जो कुछ भी लेकर या कुछ भी लेने की पर्वाह न कर, या सहज रूपमें जो कुछ भी मिलजाय उसी से सन्तुष्ट रहकर अधिक से अधिक सेवाकार्य करता है।

विरागी- इस तरह तो जीवन विकास की श्रेणीयाँ बिलकुल बदलगई गुरुदेव। मै तो समझता था कि जो धन वैभव नाम-प्रतिष्ठा तथा सब तरह के कार्यों से भी मुक्त है, पूरी तरह वितृष्ण है, वही श्रेष्ठ है।

गुरुदेव—ऐसा मनुष्य दुनिया पर बोझ है उसे वितृष्ण नहीं अतिवितृष्ण कहना चाहिये। अकर्मण्य होने से उसका दुनिया में आना क्या न आना क्या ? संसार का विकास तो इस बात में है कि तुम उसकी फालतू चीज लेलो और उसके लिये उपयोगी चीज देदो। इससे दोनों पक्षों का आनन्द बढ़जायगा। इसप्रकार संसार मे आनन्द बढ़ता रहेगा, सच्चिदानन्द की साधना होती

रहेगी।

विरागी- जरूर होती रहेगी गुरुदेव ! अब मुझे इस दृष्टि से जीवन विकास का क्रम ही बदलना पड़ेगा। अब आप ही इसका श्रेणी विभाग बताने की कृपा कीजिये।

गुरुदेव-उत्तरोत्तर हीनता की दृष्टि से क्रम इसप्रकार होगा!

१—नामप्रतिष्ठा की पर्वाह न कर अधिक से अधिक सेवा देनेवाला।

२-न्यायोचित नाम प्रतिष्ठा लेकर सेवा देनेवाला।

३-न्यायोचित धन लेकर सेवा देनेवाला!

४-नाम प्रतिष्ठा और धन में उदासीन रहकर सेवा न देनेवाला।

५-अन्याय से प्रतिष्ठा लूटकर सेवा देनेवाला।

६-अन्याय से धन लूटकर सेवा देनेवाला।

७-प्रतिष्ठा लूटकर भी सेवा न देनेवाला।

८-धन लूटकर भी सेवा न देनेवाला।

९-दोनों लूटकर भी सेवा न देनेवाला।

इनमें प्रथम तीन उत्तम है, दूसरे तीन मध्यम और तीसरे तीन जघन्य।

विरागी—बहुत अच्छा श्रेणी विभाग है गुरुदेव ! अब मैं मध्यम श्रेणीमें से निकलकर उत्तम श्रेणीमें जाने की कोशिश करूंगा। कृष्णकान्त जी को मैं धन्यवाद देता हूँ कि उनने आज आपके दर्शन कराये और मेरा जीवन जो निष्फल बनने जारहा था सफलता की ओर मोड़ने का अवसर दिया।

इसके बाद दोनों गुरुदेव को प्रणाम करके चले गये।

२७ तुपी ११९६२ इ. सं.
१४-७-६२

सत्यभक्त
गाजियाबाद (प्रवासमें)

२३—उपकार का जमानामा

गुरुदेव के पास ध्यानचन्द्र आये और प्रणाम करके गम्भीर मुद्रा मे बैठ गये। गुरुदेव ने पूछा--आज कौनसी उलझन लेकर आये हो ध्यानचन्द्र!

ध्यानचन्द्र ने कहा-ऐसी कोई खास उलझन तो नही है गुरुदेव! फिर भी छोटीसी उलझन भी बहुत परेशानी में डाल देती है।

गुरुदेव- फांस तो छोटी भी बेचैनी पैदा कर देती है। आखिर बात क्या है?

ध्यानचन्द्र— बात एक नहीं अनेक है। कितनी भी कोशिश करूं कभी कभी ऐसे अप्रत्याशित झटके लगते है जिससे आदमी तिलमिला जाता है पर कुछ बोल नहीं सकता।

गुरुदेव-किन किन बातों के झटके लगे तुम्हें?

ध्यानचन्द्र—पिछले दिनों मे झटके ही झटके लगे गुरुदेव। मेरे पड़ौसी को तो आप जानते ही है। उन्हें मै चाचा जी कहता हूँ। बहुत मानता हूं। छोटी अवस्था में उनने मुझे गोद में खिलाया है। मेरे अध्ययन मे भी मदद की है और मै भी उनकी जितनी बन सके सेवा करता रहा हूँ। बाजार से शाकभाजी लाना और भी सौदा करना, कभी कभी बीमारी में परिचर्या करना आदि सभी काम करता रहा हूँ। उनके घर को मैने अपना घर ही माना है।

गुरुदेव—तो आज गैरपन की बात क्या होगई?

ध्यानचन्द्र—आज नहीं गुरुदेव, कई दिनों से झटके खारहा हूं। मै घरु आदमी की तरह जब चाहे जहां चाहे उनकी मोटर गाड़ी लेजाता था, जब चाहे तब टेलीफोन कर लेता था, पर इधर कई दिनो से वे इन बातों के लिये अनिच्छा दिखा रहे है। हालांकि मै उनके काम के लिये भी आता जाता था, उनके काम के लिये फोन करता था। कुछ अपना भी उपयोग कर लेता

था। मेरी सेवाएँ कम नहीं हैं गुरुदेव ! बल्कि वे अमूल्य तक कहीं जासकतीं हैं।

गुरुदेव—पर ध्यानचन्द्र ! तुमने अमूल्य का मूल्य वसूल करने की कोशिश क्यों की ?

ध्यानचन्द्र—मूल्य वसूल करने का तो कोई विचार नहीं था गुरुदेव ! कुछ तो आत्मीयता के कारण कुछ यह समझकर कि उनका भी काम करना पड़ता है मैं उन चीजों का उपयोग कर लेता था।

गुरुदेव—देखो ध्यानचन्द्र। तुम्हारे धर्म चाचा को मैं जानता हूँ। अकारणक वे ऐसा कुछ नहीं कर सकते। कुछ बात और भी होना चाहिये। होसकता है कि उनकी चीजों के उपयोग में तुमने उनकी या उनके कुटुम्बियों की सुविधा की लापर्वाही की हो ! उनकी वस्तुओं का उपयोग तुमने इस तरह किया हो मानों वे तुम्हारी हों। अपनी सुविधा के लिये तुमने उनकी या उनके घरवालों की सुविधा का ध्यान न रक्खा हो। या और कोई बात हो। तुम इस दृष्टि से आत्मनिरीक्षण करो तब शायद कुछ विचार-णीय बाते मिलसके।

ध्यानचन्द्र—इस तरह की कुछ बातें जरूर है पर वे तो बहुत छोटी छोटी है।

गुरुदेव—बातें भले ही छोटी हो परन्तु वे जिस भावना को व्यक्त करती है वे भावनाएँ छोटी नहीं होतीं। उनसे जो अनधिकार चेष्टा होती है, दूसरों के उचित अधिकार पर जो आक्र-मण होजाता है, दूसरो की उदारता को अस्वीकार करने का जो अहंकार रहता है वह छोटा नहीं होता। इसलिये उसका दुष्परि-णाम भी छोटा नहीं होता।

ध्यानचन्द्र—आप ठीक कहते हैं गुरुदेव। कभी कभी मैं उनकी गाड़ी लेजाता हूं और उनकी लड़की को पैदल आना जाना पड़ता है और उसपर मैं उपदेश ठोक देता हूँ कि आदमी को

पैदल चलने की आदत भी डालना चाहिये अन्यथा जीवन का निर्माण नहीं होता, स्वास्थ्य का निर्माण नहीं होता।

गुरुदेव—कितने भोले हो ध्यानचन्द्र ! तुम इतना नहीं समझते कि जो उपदेश अपने स्वार्थ या दुस्वार्थ की दृष्टि से दिया जाता हैं वह उपदेश नहीं रहता किन्तु धृष्ठता बनजाता है। ऐसा करने से उस समय तो उसके उपदेश का कुछ प्रभाव रहता ही नहीं है किन्तु जीवन के अन्य उचित उपदेशों का भी मूल्य समाप्त होजाता है। क्यों कि उसके उपदेशों पर स्वार्थ परता की छाप लग जाती है। उपदेश देते समय इस बात का सदा ध्यान रक्खो कि उससे स्वार्थ की बू तो नहीं आरही है। दूसरे के उचित अधिकार को धक्का तो नहीं लग रहा है, उनकी उचित सुविधा तो नहीं छीन रहे हो ?

ध्यानचन्द्र–इतना विचार तो नहीं किया गुरुदेव, मैं तो यह सोचता था कि जब मैं इनका भी काम कर देता हूं तब मुझे यह सब लेने का अधिकार है।

गुरुदेव– यहीं भूलते हो ध्यानचन्द्र ! तुम जो सेवा करते हो वह सेवा तो तुम चमक में लाते हो और जो तुम सुविधाएँ लेलेते हो उन्हें सेवा का बदला नहीं समझते, उसे भर्रे मे उड़ादेते हो। इस प्रकार तुम अपने बहीखाते में अपनी सेवा तो दूसरों के नामें लिखते हो पर दूसरों से जो कुछ मिलता है उसे जमा नहीं करते, दूसरों से प्राप्त अधिक से अधिल लाभ भी तुम अपनी सेवा के व्याज में डाल देते हो कदाचित व्याज के रूपमें भी जमा नहीं करते।

ध्यानचन्द्र–पर मेरा यह बहीखाता दूसरे कैसे पढ़लेते है ?

गुरुदेव—इस विषयमें सब की आंखें पारदर्शक होती हैं ध्यानचन्द्र ! आदमी समझता है कि मेरी ही आंखें पारदर्शक हैं इसलिये मै सब का बहीखाता देख लेता हूँ पर मेरा बहीखाता कोई नहीं देख पाता। इसे मनुष्य की घोर आत्मवञ्चना ही समझना

चाहिये। और यह बात तो चोरी के मामले में कहता हूँ कि उसका बहीखाता बिना पढ़े नहीं रहा जाता, पर जो डकैती के मामले हैं वे तो और भी अच्छी तरह प्रगट होजाते हैं ?

ध्यानचन्द्र ने आचरज से कहा-इसमें चोरी और डकैती का क्या सवाल है गुरुदेव।

गुरुदेव-दूसरो के अधिकारों का या सुविधाओं का जो अपहरण चुपचाप या शरमाते हुए किया जाता है वह तो चोरी है, पर जो अपहरण अधिकारी की तरह किया जाता है बेशर्मी से किया जाता है, जबर्दस्ती किया जाता है, अपहरण के मूल में कोई धमकी छिपी रहती है वह डकैती बनजाता है ।

ध्यानचन्द्र— क्या मैं चोर और डकैत हूं गुरुदेव !

गुरुदेव—तुम चोर या डकैत तो नहीं हो, परन्तु तुम्हारा वह व्यवहार चोरी डकैती जरूर है।

ध्यानचन्द्र-जब मेरा व्यवहार चोरी डकैती का है तब मैं चोर डकैत ही कहलाया।

गुरुदेव- मनुष्य जानबूझकर जीविका के मुख्य साधन के रूपमें चोरी डकैती करता है तब वह चोर डकैत कहलाता है। पर अजानकारी से कोई कार्य होता हो, जानकारी होने पर उसे सुधारने की वृत्ति हो तो वह मनुष्य चोर या डकैत नहीं कहलाता। मैं जानता हूँ कि उपकार का जमानामा भरने का ठीक ज्ञान न होने से तुमसे यह भूल हुई है इसलिये तुम्हारा व्यवहार चोरी डकैती का होने पर भी तुम चोर डकैत नहीं हो।

ध्यानचन्द्र—तो जमानामें का ज्ञान करा दीजिये गुरुदेव ! उसके कुछ सूत्र बता दीजिये।

गुरुदेव- अभी तक जो बातें मैंने तुमसे कहीं हैं उनसे तुम्हें इन सब बातों के सूत्र ध्यान में आही गये होंगे फिर भी खास खास सूत्रों का निर्देश कर देता हूं।

१—किसी आदमी ने तुम्हारे जो उपकार किये उसे धन्य-

वाद सहित स्वीकार करो। शब्दों से या व्यवहार से उसका उल्लेख जरूर करो।

२—किसी ने तुम्हारा उपकार किया है तो उसे अपना अधिकार न समझो!

३-जितना उपकार मिले उतना जमा करो और कृतज्ञ रहो, आगे अगर उपकार मिलना बन्द होजाय तो उसे नामे में लिखना शुरु मत करदो। जितना मिलगया उतने में ही सन्तुष्ट तथा कृतज्ञ रहो।

४—उपकार उतना ही लो जितने में देने वाले का मन प्रसन्न रहे, उसे वह अखरने न पाये।

५—किसी की चीज का उपयोग करते समय इस बात का ध्यान रक्खो कि उससे तुम्हें जितनी सुविधा मिल रही है, चीज के मालिक को उतनी असुविधा तो नहीं होरही है। ऐसी हालतमे जहां तक बने वह चीज न लो, और मागकर या विवश-कर तो कभी मत लो।

६-समय पर चीज पहुँचाना, जैसी की तैसी पहूँचाना, बिना मांगे पहुँचाना आदि बातों का पूरा ध्यान रक्खो। अन्यथा जितना तुम लाभ उठाओगे उससे कई गुणा ऐसा ऋण लाद लोगे जिसे तुम चुका नहीं सकते।

७—प्रत्युपकार भी कुछ करते हो तो उसका मूल्यांकन कम से कम करो। ऐसा न हो कि दूसरो के द्वारा प्राप्त उपकार का मूल्यांकन तो कम से कम करो और अपने द्वारा किये गये प्रत्युपकार का मूल्यांकन अधिक से अधिक करो।

८—जनसेवा का उपकार जनता पर ही समझो। वह उपकार उस व्यक्तिपर मत लादो जिसके सहारे जनसेवा की है।

९—उपकार वही कराओ जिसकी पूर्ति तुम अपनी शक्ति या साधनो से नहीं कर सकते या बहुत अधिक परेशानी उठाकर ही कर सकते हों। लोभ तृष्णा आदि के वश होकर उप-

कार न कराओ। या दूसरों को ऐसी चीज काम मे न लो जिसे तुम्हें खुद खरीदकर रखना चाहिये।

१०—कोई देखनेवाला नहीं है यह समझकर किसीकी चीजका उपयोग न करो। यह समझकर चलो कि वह बराबर देख रहा है। ऐसा समझकर जितना उपयोग कर सको करो।

११- दबाव या धमकी से उपकार वसूल करने में कोई सौहार्द नहीं रहता। ऐसे वातावरण में प्रेम मित्रता आदि नहीं रह सकती। इसका ध्यान रक्खो।

१२—बेतकल्लुफी के नाम पर, या कौटुम्बिकता के नाम पर बिना अनुमति के किसी की चीज का उपयोग न करो।

१३-दूसरों का मनोभाव संकेत मे या मुखाकृति से समझने की कोशिश करो। उनको अपना असन्तोष विरोध या इनकार शब्दों से प्रगट होने का अवसर न आने दो।

१४—इस बात का हिसाब लगाते रहो कि हमने किससे क्या क्या पाया है। केवल देने का ही हिसाब न रखो।

इन सब बातों का ध्यान रक्खोगे तो न तुम्हें झटके खाने का मौका आयगा न तुमसे दूसरों को परेशानी होगी। कुछ बातें और होसकती है पर इन बातों का ध्यान रखने से उनका भी पता लग जायगा। यों आचार की सब से बड़ी कसौटी आत्मौपम्य भाव की हो। अर्थात अपने को दूसरों की परिस्थिति मे या दूसरों को अपनी परिस्थिति मे रखकर देखो। सब निर्णय होजायगा।

ध्यानचंद्र-बहुत बहुत खुलासा किया गुरुदेव आपने। आशा है अब उपकार के जमानामे में मुझसे भूल न होगी।

५ मुंका ११९६२ सत्यभक्त
१४-६-६२ गाजियाबाद (प्रवासमें)

२४—कठिण साधुता

आते ही सिवाम ने पूछा-गुरुदेव ! आप कहते हैं कि दुनिया विनिमय के आधार पर टिकती है और साधुता के आधार पर पनपती है। इस देश में साठ सत्तर साधु कहे जाते है पर उनके आधार से दुनिया पनपती नहीं मालूम होती। बल्कि उनके आधार से जो कुछ पिछड़ती सी मालूम होती है।

गुरुदेव-तुम ठीक कहते हो सिवाम,इन साधु कहलाने वालोंसे दुनिया पिछड़ ही रही है,पर दुनिया साधुता के आधारसे पनपती है साधुवेष के आधार से नहीं साधुता के दम्भ के आधार से नहीं। जो साठ सत्तर लाख साधु कहे जाते है उनमें से हजारों में एकाध ही साधु होता है और उतने अंश मे दुनिया पनपती भी है परन्तु बाकी से जो पिछड़ रही है उससे टोटल मिलाकर दुनिया का पनपना मालूम नही होता।

सिवाम-सच्चे साधुओं का अनुपात इतना कम क्यों है गुरुदेव !

गुरुदेव--एक तो सच्ची साधुता कठिन है, उसके लिये बड़ी साधना की जरूरत है, दूसरी बात यह है कि सच्ची साधुता को समाज पसन्द नहीं करता, उसकी अवहेलना करता है। उसकी राह मे पद पद पर कांटे बिछाता है समाज पूजा करता है नकली साधुओं की, दम्भिओं की, आडम्बरिओं की।

सिवाम ने आश्चर्य से कहा-यह कैसी बात गुरुदेव ! जो समाज का हित करता है उसे समाज पूजता नहीं, और जो कुछ नहीं करता उसकी पूजा करता है । ऐसा अन्धेर कैसे होसकता है। ऐसा होना तो नहीं चाहिये।

गुरुदेव—होना तो नहीं चाहिये पर होता है जरूर । एक आदमी अगर आसन मारकर चुपचाप बैठजाय तो उसके दर्शन के लिये भीड़ इकट्ठी होजायगी । एक आदमी वर्षों मौन

रहजाय तो वह भी देवता बन जाता है, खूब पुजता है। इसी तरह नंगे रहने वाला, लम्बे उपवास करन वाला, दुनिया से भागने का ढोंग करने वाला, किसी काम की जिम्मेदारी न लेने वाला, वृथाकष्टों का प्रदर्शन करनेवाला, जनता को परशान करने वाला, उसकी कोई पर्वाह न करन वाला भी खूब पुजता है। उसको दुनिया सेवा देगी प्रतिष्ठा देगी यश देगी, और बदले में कुछ न पायगी तो भी सन्तुष्ट रहेगी। परन्तु सच्चे साधु का तेल निकाल लेगी। वह महान ज्ञानी होगा विचारक होगा तो उसका विरोध करेगी, निन्दा करेगी। वह सेवाभावी होगा जिम्मेदार होगा तो उसकी भरपूर सेवा लेकर भी कृतज्ञता प्रगट न करेगी किन्तु उससे ज्यादा सेवा क्यों नहीं मिली इसी बात पर निन्दा करेगी।

सिवाम—यह बात तो बराबर देखी जाती है गुरुदेव ! सच्ची साधुता की कद्र करने वाले बहुत थोड़े लोग है।

गुरुदेव—नहीं ही है ऐसा कहना ही ठीक होगा। जो कुछ समझदार है, सच्ची साधुता का रूप पहिचानते है, वे भी शिष्टाचार मे उन्हीं को ज्यादा महत्व देते है जो अकर्मण्य हैं, दम्भी है, दुनिया को गुमराह करते हैं। उनके पास जायँगे तो उनसे गृहस्थोचित सेवा की कोई आशा न करेंगे, शिष्टाचार की भी आशा न करेंगे, उनके आगे नीचे से नीचे स्थान पर भी बैठ जायँगे, पानी की भी आशा न करेंगे, आर्थिक सहयोग की तो बात ही दूर है, बल्कि जो बनसकेगा उन्हें देंगे ही। परन्तु जो सच्चा साधु है ज्ञानी है सेवाभावी है उसे देंगे कुछ नहीं, पर चाहेंगे मनमानीसेवा, करीब करीब बराबरी का शिष्टाचार, आर्थिक लाभ आदि। और इसमे कुछ कमी पड़जाने पर करेंगे निन्दा, वैर विरोध !

सिवाम—इस दृष्टि से देखा जाय तो सचमुच लोग साधुता के विरोधी है। जनता का यह अज्ञान अनादि से चला

आरहा है। न जाने कब दूर होगा।

गुरुदेव—अनादि से तो नहीं चला आरहा है। वैदिक युग मे समाजसेवी साधुओं की ही प्रतिष्ठा थी। ऋषि लोग ज्ञान देते थे, ज्ञानी होते थे इसीसे प्रतिष्ठा पाते थे। वे ऋषि लोग सपत्नीक रहते थे अनावश्यक कष्ट न सहते थे, पर ज्ञान का और संयम को साधना करते थे, दुनिया इसकी कद्र करती थी। परन्तु निवृत्तिवाद का ज्वार आजाने पर वैदिक युग की साधुसंस्था नष्ट होगई। स्त्रियो की घोर निन्दा होने लगी, दम्पति साधुओ की साधुता छीन लीगई। ज्ञान और सेवा को पूज्यता न रही, दम्भ और अकर्मण्यता की रही। ऐसी अवस्था मे सच्ची साधुता कैसे टिकेगी, और सच्ची साधुता के बिना दुनिया कैसे पनपेगी ?

सिवाम— नहीं पनपेगी गुरुदेव ! उसके लिये वैदिक युग फिर लाना पड़ेगा।

गुरुदेव — बीता युग तो फिर कैसे आसकता है। सिवाम ! उस युग के यज्ञ आदि कार्य इस युग मे किस काम के ! उस युग का अविकसित ज्ञान भी इस युग मे किस काम का ! उस युग की वर्ण व्यवस्था का भी अब क्या उपयोग ! परन्तु उस युग की साधुसंस्था का ढांचा यदि आज के लिये उपयोगी है तो जरूर लेना चाहिये।

सिवाम—यह बहुत अच्छा विश्लेषण है गुरुदेव ! वैदिक युग की अन्य बातें न सही पर उस युग की साधुसंस्था का तो पुनरुज्जीवन होना ही चाहिये। जिससे साधुसंस्था समाजोपयोगी बने, और ऐसी ही सच्ची साधुसंस्था प्रतिष्ठित हो। और आज जो लाखो की संख्या मे साधुवेषी दिखाई देते हैं उनके स्थानपर सच्चे साधु दिखाई देने लगें।

गुरुदेव—सच्चे साधु लाखो की संख्या मे तो दिखाई न देंगे सिवाम, क्योंकि सच्ची साधुता बहुत कठिण है।

सिवाम—पर आप तो अनावश्यक कष्टों का विरोध

करते हैं गुरुदेव, तब सच्ची साधुसंस्था में कठिनाई क्या है ?

गुरुदेव—दम्भपूर्ण कठिनाइयाँ न होनेपर भी साधना की कठिनाइयाँ बहुत है निवृत्तिवाद में ज्ञानी न होनेपर भी, जनसेवा पर उपेक्षा करनेपर भी, अकर्मण्य रहने पर भी साधु की प्रतिष्ठा मिलजाती है। परन्तु सच्ची साधुसंस्था में इन बातों से साधुता छिनती, अनावश्यक कष्टों का वहां कोई मूल्य नहीं होता। उसके लिये जनहितकारी असाधारण ज्ञान चाहिये, किसी सेवाकार्य की विशेष योग्यता चाहिये, किसी सेवाकार्य की जिम्मेदारी चाहिये। इन सब बातों का वास्तविक मूल्य तो आंका नही जासकता पर बाजारू मूल्य भी उससे अधिक होता है जितना साधु अपने खाने पीने मे खर्च करता है। ऐसी अवस्था में सच्चे साधु को आर्थिक दृष्टि से काफी उदार ईमानदार और निस्पृह बनना पड़ता है और उसे काफी बड़ी योग्यता की जरूरत होती है। वैसी जरूरत निवृत्तिवादी साधुसंस्था को नहीं होती। इसलिये सच्ची साधुसस्था मे कठिनता बहुत है।

सिवाम हां ! यह कठिनता तो है और इतनी बड़ी कठिनता है जिसपर विजय बहुत ही कम लोग पासकते है।

गुरुदेव- यह मूलभूत कठिनता तो है, साथ ही सामाजिक कठिनता भी है। समाज की मूढता के कारण सच्ची साधुता की अप्रतिष्ठा होती है अवहेलना होती है. उससे तुच्छ स्वार्थ वसूल किये जाते है, स्वार्थ की मात्रा बढ़ती ही जाती है इसलिये बहुतसा स्वार्थ वसूल करके भी कमी रह ही जाती है और कमी के बदले निन्दा की जाती है, इस प्रकार साधु को दूसरों की कृतज्ञता का शिकार होना पडता है। निवृत्तिवादी साधुओं ने तो ऐसे नियम बनालिये हैं जिससे उनसे कोई कुछ ले नहीं सकता, उन्हें देना ही पड़ता है। इससे लेने की कमी का कोई सवाल ही नहीं उठता। पर सच्ची साधुता के कुछ बाहरी नियम निश्चित नहीं है इसलिये जनता को उसकी मर्यादा का कोई भान ही नहीं

होता। वह उन्हें साधु तक नहीं मानती। इसलिये योग्य प्रतिष्ठा तो देती ही नहीं है साथ ही उनपर नाना तरह के बोझ लादती है, गृहोस्थोचित शिष्टाचार भी लादती है, और अन्त में निन्दा भी करती है।

सिवाम—यह बहुत बडी कठिनता है गुरुदेव ! योग्यता सेवा आदि की कठिनता पर तो साधु का वश है। वह चाहे तो इसे अपनी साधना के द्वारा पूरा कर सकता है, पर समाज की ओर से उसकी जो अवहेलना होती है वह तो पाप है। उसने सच्ची साधुता को नष्ट कर दिया है। इससे सत्य का घोर अपमान होता है, और इससे जनता का भी हानि होती है। दुनिया को इस पाप से और हानि से जरूर बचाना चाहिये। अकर्मण्य दम्भपूर्ण साधु की अपेक्षा सच्चे साधु की प्रतिष्ठा कम हो, उससे अधिक लाभ वसूल नहीं किया जासका इसलिये उसकी निन्दा हो, यह तो असह्य है। सच्चा साधुता मूलमें जो कठिन है वह रहे पर यह जो सामाजिक कठिनता है, जो अन्यायपूर्ण है, वह तो जाना ही चाहिये। आप सच्ची साधुता की मर्यादा निश्चित कर दीजिये गुरुदेव ! जिससे सच्ची साधुता की अवहेलना न हो और लोग भी साधुता की अवहेलना के पाप से बचें।

गुरुदेव–तुम्हारा आग्रह उचित है सिवाम ! इसकी छोटी छोटी सभी बातें तो नहीं बताई जासकती, बहुतसी बातों का निर्णय समयपर ही करलेना पड़ेगा फिर भी कुछ खास खास बातों का जिक्र कर दिया जाता है।

१—साधु के साथ शिष्टाचार निभाते समय उसके ज्ञान, ईमान, और सेवा का ही विचार किया जाना चाहिये; बाह्याडम्बर, वृथाकष्टसहन आदि का नहीं।

२—साधु ने जो सेवाकार्य अपने ऊपर लेलिया है वह सेवा स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं, परन्तु उससे अन्य सेवा की आशा न करना चाहिये।

जैसे जिस ज्ञानी साधु ने ज्ञान या उपदेश देने का काम लिया है। उनसे ज्ञान या उपदेश लिया जासकता है, किसी ने धर्मार्थ दवाखाना खोल रक्खा है उससे दवा ली जासकती है, इस प्रकार और भी जो कार्य उसने ले रक्खा है वह उससे स्वीकार करो और इसके सिवाय उससे कोई श्रम वसूल करना, किसी तरह का आर्थिक लाभ उठाना, अनुचित है। बीमारी आदि की अवस्था मे कभी कुछ उठाना भी पड़े तो जिस रूपमे बन पड़े उसका बदला उसे या समाज को दो।

३—साधु जो जनसेवा का कार्य कर रहा है उसमें तुम कोई मदद करते हो तो उसे साधु के ऊपर उपकार न समझो, जनता के ऊपर उपकार समझो। अगर निःस्वार्थ दृष्टि से यह जनोपकार कर सकते हो तो अच्छी बात है, नहीं कर सकते हो तो उसका बदला जनता से लो, साधु से नहीं। और जो कुछ लो स्पष्ट रूपमें लो। ऐसा न हो कि निःस्वार्थ सेवक कहलाने का तो ढोंग करो और आड़ी टेढ़ी रीतिसे मिहनताना वसूल करो। यह चोरी होजायगी।

४—साधु के पास जानेपर उसपर कोई बोझ न डालो! अपने खानपान बिस्तर आदि की व्यवस्था आप कर लो। यदि ऐसी कोई व्यवस्था वह न कर सके तो इसे उसकी उपेक्षा न समझो! इसलिये उसकी निन्दा न करो! अगर वह सरलता से कोई सुविधा देसके तो उसका उचित बदला जरूर दो। न वह लेता हो तो उस संस्था को दो जिसकी तरफ से यह व्यवस्था होरही है।

५—स्वागत तथा बैठने उठने के शिष्टाचार में इस बात का ध्यान रक्खो कि सच्चे साधु का स्थान, सभी गृहस्थों से ऊंचा है। हां! गृहस्थों में भी साधुता होती है विशेष योग्यता होती है, शिष्टाचार मे उसका भी विचार होना चाहिये।

६—निवृत्तिवादी साधुओं में जिसप्रकार नारी निन्दा की

जाती है नारी की प्रतिष्ठा कम की जाती है उससे पूरी तरह बचते रहो। तरतमता लैंगिक दृष्टि से नहीं, किन्तु ज्ञान ईमान सेवा की दृष्टि से ही रहे।

७–साधु वेतन और मेहनताना के रूप में कहीं से कुछ न ले। वह भेंट लेसकता है पर उसपर उसकी मालिकी न होगी। वह जनसेवा के कार्य में ही खर्च की जायगी। समाज से तो वह उतना ही लेने का हकदार है जितना उसके निर्वाह के लिये और सेवाकार्य के लिये जरूरी है। अगर वह कभी राष्ट्रपति मंत्री संसद् सदस्य आदि बनजाय, तो उसे जो कुछ सरकार से मिले वह समाज को अर्पित कर दे। अर्थात् जो आवश्यक खर्च हो वह तो करले बाकी बचत समाज को या सम्बद्ध संस्था को दे दे।

८ – साधु के प्रति जो विनय कीजाय उसकी परिचर्या कीजाय उसका बदला आर्थिक रूपमें वसूल न किया जाय। हां! जो लोग परिचर्या का धंधा ही करते है उनके साथ साधुका सम्पर्क एक ग्राहक के रूपमें आये तो बात दूसरी है।

९–सिर्फ आत्मकल्याण के नाम से किसी को साधु न बनना चाहिये। जब तक जनसेवा का कोई कार्य उसके सामने न हो और उसकी अवैतनिक जिम्मेदारी उठाने की तैयारी न हो तब तक किसी को साधुवेष न धारण करना चाहिये। और कोई साधुताहीन होकर साधुवेष धारण करले तो उसकी साधु के समान प्रतिष्ठा न करना चाहिये।

१०–कोई साधु या साधुसंस्था ऐसे नियम बनाले कि मै अमुक काम नहीं करूंगा, इसीसे उसे बड़ा न समझो। और श्रम करके जो स्वावलम्बी जीवन बिताता है उसे छोटा न समझो। बल्कि इस बातको उल्टा करो। काम न करने वाले को छोटा समझो और काम करने वाले को बड़ा समझो। एक साधु ने नियम बनालिया मै पानी नहीं भरूंगा, रोटी नही बनाऊँगा, झाड़ू न दूंगा, खेती नहीं करूंगा, आवश्यकता होने पर भी किसी को

सेवा न करूंगा आदि। ऐसे आदमी को निष्पृह या वीतराग समझकर उसे अधिक प्रतिष्ठा देना उसे हरामखोर बनाना है। और जो इस प्रकार के सेवा कार्य करता है यथाशक्य स्वावलम्बी जीवन बीताता है उसे संसारी समझकर उसकी अवहेलना करना साधुता का अपमान करना है। इसलिये विरक्ति के नाम पर गढ़े गये अकर्मण्यता रूप या आडम्बर रूप नियमों को जरा भी महत्व न दो। हां! कार्य की व्यस्तता आदि कारणों से किसी को कोई काम करने का अवसर न आता हो या दूसरे सहयोगी न आने देते हों तो बात दूसरी है। पर अकर्मण्यता लापर्वाही मौन आदि को वीतरागता निष्पृहता त्याग निर्लिप्तता आदि ऊंचे ऊंचे नाम देकर प्रतिष्ठित करना, दुनिया को हरामखोरों से भरना है।

११–साधुता का माप वैभव से न किया जाय। बहुत दिनों तक सच्ची साधुता दिखाने पर कभी कभी कोई साधु बहुत वैभवशाली भी होसकता है पर साधारणतः वैभवशाली साधु तभी होता है जब उसने लोकहित की नहीं लोकरंजन की पर्वाह की होती है। जनता को चकमा दिया हो, कलाओं से रिझाया हो, उसके अन्धविश्वास बढ़ाकर उसे ठगा हो, आडम्बर दम्भ से धोखा दिया हो आदि। इसलिये साधु के वैभव को–चाहे वह प्रत्यक्ष वैभव हो चाहे अप्रत्यक्ष–कभी महत्व न देना चाहिये। उसका ज्ञान ईमान सेवाभाव आदि देखकर ही महत्व देना चाहिये।

बस यह सूचनाएँ काफी तो हैं। अगर साधु इनका पालन करें और जनता इनका ध्यान रक्खे तो साधुसंस्था सच्चे साधुओं की संस्था बनजाय। और फिर दुनिया को पनपने में देर न लगे।

सिताराम—जरूर न लगे गुरुदेव! इस विषयमे जनता का ही मुख्य कर्तव्य है। बाजार में मांग के अनुसार ही माल की पूर्ति होती है। जनता यदि अकर्मण्य दम्भी साधुओं की कीमत करेगी तो वैसा ही माल बाजार मे आयेगा। सच्चा साधु दिखाई न देगा। खोटे सिक्के असली सिक्के को बाजार से हटा देते हैं।

साधुओ के बारे में भी यही बात हैं।

गुरुदेव– बिलकुल ठीक कहा सिवाम तुमने। असली जिम्मेदारी जनता की है! जनता की मूढ़ता ने ही साधुता को कठिन बनादिया है। अगर जनता विवेक से काम ले तो आधी कठिनता अपने आप दूर होजायगी। बाकी साधना से हल होजायगी।

सिवाम-मानता हूँ गुरुदेव कि दुनिया साधुता से पनपती है पर साधुता सच्ची होना चाहिये। इसलिये सच्ची साधुता की कद्र होना चाहिये उसकी मर्यादा का पालन होना चाहिये।

७ चन्नी ११९६२ इ. सं. सत्यभक्त

९-१२-६२ गाजियाबाद (प्रवासमें)

२५—वृद्धों का गौरव

प्रकाशचन्द्र और रजनीकान्ता नवदम्पति है। काफी सम्पन्न है। घर मे वृद्धा मां और नौकर चाकरो के सिवाय कोई नहीं है। प्रकाश जब पांच वर्ष का बच्चा था तभी पिता का देहान्द होगया था। मां ने बड़े धैर्य से बड़े यत्न से प्रकाश का पालन पोषण किया। घरमे सम्पत्ति थी इसलिये पैसे की दिक्कत तो नहीं हुई फिर भी अकेली विधवा को एक बच्चे को लेकर जिन्दगी बिताने और उसका पालन पोषण कर आदमी बनाने मे काफी मानसिक और शारिरिक कष्ट सहने पड़ते हैं। मां ने वे सब सहे। लड़के को पढ़ालिखाकर होश्यार बनाया! लड़का बड़ा आज्ञाकारी और मातृभक्त था। बड़ा होजानेपर भी स्वभाव से माता के आश्रित था। माता की अनुमति के बिना कोई काम न करता था।

प्रकाश की मां कौशल्या आदर्श माता थीं। बहुत शिक्षित न होनेपर भी उनके विचारों मे काफी आधुनिकता थी। सास बहू के झगड़ों से उन्हें सख्त नफरत थी। वे सोचती थीं कि

सासें यदि बहुओं को बेटी समझकर व्यवहार करें तो झगड़े का कोई कारण ही न रहे। इसलिये जब प्रकाश की शादी हुई तब रजनीकान्ता से उनने बेटी की तरह ही व्यवहार किया। समाज में पर्दे का रिवाज होनेपर भी उनने बहू से पर्दा न कराया। बैठने उठने आने जाने मे हुकुम न चलाया। पतिपत्नि के परस्पर विनोदों को उनने वत्सल मा की तरह देखा। इसलिये रजनीकान्ता को पीहर की तरह उन्मुक्तता और ससुराल की तरह पतिसुख दोनो ही मिले। परन्तु यह उन्मुक्तता रजनीकान्ता को पच न सकी। उसने सास की अवहेलना का रूप लेलिया। इसलिये कौशल्या खिन्न रहने लगी। वातावरण में उदासी छागई। एक तरह का खिंचाव सा आगया। कौशल्या ने गुरुदेव के पास आकर अपनी मानसिक व्यथा कह सुनाई। गुरुदेव ने कहा–तुम्हारी बात मेरे ध्यानमे आगई कौशल्या! जब वे दोनो मुझसे मिलने आयँगे तब इस विषयमे उन दोनो से चर्चा करूंगा। और आज वे दोनों गुरुदेव से मिलने आये हैं। गुरुदेव की वन्दना करके जब वे एक ओर बैठगये, तब गुरुदेव ने पूछा–

गुरुदेव—तुम स्वस्थ और आनन्द में तो हो?

प्रकाश—आप की कृपा से स्वस्थ है गुरुदेव! और आनन्द में भी कहे जासकते हैं।

गुरुदेव—अर्थात् आनन्द में कहेजासकते हो, आनन्द में हो नहीं।

प्रकाश- हां! कुछ कुछ ऐसी ही बात है गुरुदेव! खाने पीने का, रहने का, पहिरने ओढ़ने का, नौकर चाकरों का कोई कष्ट नहीं है इसलिये आनन्द में कहे जासकते हैं, पर माताजी की नाराजी के कारण आनन्द मे हैं नहीं।

गुरुदेव—तुम्हारी माताजी तो बड़ी प्रेमल है। जिस तरह उनने तुम्हारा पालन पोपण किया है. जिस तरह पुत्रवधू को पुत्री की तरह मानकर रक्खा है उसको देखते हुए उनकी नाराजी

होना तो न चाहिये।

प्रकाश-होना तो न चाहिये पर है जरूर। हम लोग यह भी नहीं समझ पाते कि नाराजी का कारण क्या है ?

गुरुदेव- तुम्हारी मां जितनी गम्भीर हैं उसे देखते हुए यह तो सम्भव नहीं कि वे अपना असन्तोष स्पष्ट शब्दों में प्रगट करें, तुम्हें खुद ही उनका असन्तोष जान लेना चाहिये।

प्रकाश—उन्हें कोई तकलिफ तो मालूम नहीं होती। नौकर चाकर सब उनका विनय करते है सब उनकी सेवा में कोई अन्तर नही आने देते और सभी उनकी आज्ञा मे रहते है।

गुरुदेव-तुम लोग भी क्या उनकी आज्ञा मे रहते हो ?

प्रकाश— हम लोगो को कभी वे आज्ञा ही नहीं देतीं इसलिये आज्ञा मे रहने का सवाल ही खड़ा नही होता।

गुरुदेव-आज्ञा भले ही न देतीं हो पर अनुमति मांगने पर अनुमति तो देसकतीं है। कभी तुम लोग उनसे अनुमति मांगते हो ?

प्रकाश—इसकी तो कभी जरूरत नहीं मालूम हुई गुरुदेव ! हां ! सूचना जरूर करजाता हूं।

गुरुदेव- जब किसी काम के करने का संकल्प करलिया जाता है, उसकी तैयारी भी करली जाती है तब सूचना दी जाती है। सूचना से यह प्रगट होता है कि हम जो कार्य कर रहे हैं उसमें तुम्हारी इच्छा अनिच्छा की हमे पर्वाह नहीं है। जब कि अनुमति पहिले ही मांगी जाती है, उसके बाद संकल्प और तैयारी की जाती है। अनुमति मांगने में अनुमतिदाता की इच्छा अनिच्छा की पर्वाह की जाती है। तुम ने अनुमति न मांगी सूचना दी इसका मतलब यह कि तुमने मां के अस्तित्व से या उनके अनुशासन से इनकार कर दिया।

रजनीकान्ता-अब मै समझी गुरुदेव ! जब हम दोनों कल शामको सिनेमा देखने गये थे तब फाटक बन्द करते समय

मैंने जोर से कहा था—माता जी, हम सिनेमा देखने जाते हैं, हमें देर होजायगी आप हमारी बाट देखें। रातमें देर से आनेपर मालूम हुआ कि माता जी ने भोजन नहीं किया है, उनकी तबियत खराब है।

गुरुदेव—अगर माताजी न होतीं तो ऐसी सूचना तुम किसी नौकर और नौकरानी को भी देकर जातीं।

रजनीकान्ता—हां गुरुदेव, बात तो ऐसी ही है।

गुरुदेव—अब तुम समझसकती हो कि माता जी को तुमने किस श्रेणी मे फेंक दिया है। क्यों प्रकाश, विवाह के पहिले भी तुम क्या माताजी को सूचना ही दिया करते थे, अनुमति कभी न मांगते थे?

प्रकाश—ऐसा तो नहीं था गुरुदेव, विवाह के पहिले मैंने माता जी को सूचना कभी नहीं दी, अनुमति या आज्ञा ही मांगी है। उनकी अनुमति या आज्ञा के बिना मैंने कभी कोई काम नहीं किया, यहां तक कि उनकी अनुमति के बिना किसी काम का संकल्प तथा तैयारी भी नहीं की।

गुरुदेव—फिर विवाह होते ही ऐसा क्यों हुआ? क्या तुम्हें इस बात का भय हुआ कि माता जी तुम्हारी स्वतंत्रता में बाधा डालेंगी?

प्रकाश—यह भय भी नहीं हुआ गुरुदेव, माताजी कभी किसी काम को रोकती नहीं बल्कि उनने तो हमें हरकार्य के लिये प्रोत्साहित ही किया है? मुझे खुद अचरज होता है कि मुझमें ऐसा परिवर्तन क्यों होगया?

गुरुदेव—परिवर्तन का कारण तो स्पष्ट है प्रकाश! पति-पत्नी मिलजाने पर जो एक तरह की पूर्णता का अनुभव करते हैं उससे वे सोचने लगते है कि अब हम पूर्ण हैं हमें किसी की आवश्यकता नहीं है। और यह अनावश्यकता, लापर्वाही और कृतघ्नता मे बदल जाती है।

प्रकाश- यही बात है गुरुदेव !

गुरुदेव-जब तुम बूढ़े होजाओगे और तुम्हारे बच्चे जब तुम्हारी जीवनभर की सेवा भूलकर तुम्हारे प्रति लापर्वाह और कृतघ्न होजायँगे तब तुम्हें उनकी यही बात कैसी मालूम होगी ?

प्रकाश-बुरी मालूम होगी गुरुदेव,बहुत बुरी मालूम होगी।

गुरुदेव-क्यों ? क्या तुम बच्चों की प्रसन्नता मे प्रसन्नता का अनुभव न करोगे ?

प्रकाश—करूंगा। परन्तु जिन बच्चों को पालने में मै खून पसीना एक करूंगा वे समर्थ होकर इतने लापर्वाह होजायँ कि हमारा अस्तित्व ही भूलजायँ, हमारी इच्छा अनिच्छा अनुमति अननुमति की पर्वाह न करें तब उसका यही अर्थ होगा कि बच्चों को पालकर हमने असमयमे ही मौत बुलाई, बुढ़ापा बुढ़ापा न रहा मौत बनगया।

गुरुदेव अब तुम इसी कसौटी पर कसकर अपनी माता जी के दर्द को समझने की कोशिश करो ! क्यों रजनी ! कल जब तुम लोग सिनेमा देखने गये और जाते समय सिर्फ सूचना देगये, उसके बदले एक घंटे पहिले तुमने माताजी से पूछा होता कि मां, क्या हम सिनेमा देख आयें ? तो क्या माता जी ने मना कर दिया होता ?

रजनी-नहीं गुरुदेव ! माता जी ने कदापि मना न किया होता।

गुरुदेव—क्यों प्रकाश, यदि तुमने माताजी से यह पूछा होता कि मां, हम लोग आज सिनेमा देखना चाहते हैं, तुम चलो हमारे साथ। तो माता जी ने क्या कहा होता।

प्रकाश—यही कहा होता कि बेटा, तुम लोग जाओ, मेरी तो इच्छा नहीं है।

गुरुदेव—और तुमने जरा मिनमिनाते हुए कहा होता कि 'मां, पहिले तुम खेल तमाशे मे तथा सब कामों में साथ देतीं थी अब क्यो नहीं देतीं ? क्या अब हम तुम्हारे बच्चे नहीं है ?' तो-

मां ने क्या कहा होता ?

प्रकाश-यही कहा होता कि 'अब तुम बड़े होगये हो बेटा।'

गुरुदेव-और तुमने यह कहा होता कि दुनिया के लिये हम बड़े होगये तो क्या तुम्हारे लिये भी बड़े होगये मां ? क्या अब भी मै तुम्हारा बच्चा नहीं हूं ? क्या तुम मुझे अपना बच्चा समझकर प्यार नहीं करती ?' तो मां ने क्या कहा होता ?

प्रकाश फफक पड़ा और रोते रोते कहा-अब मत पूछिये गुरुदेव ! मै मनुष्य से पशु बनगया था इसलिये मां को भुला बैठा था। पशु ही जवान होकर अपनी मां को भूल जाता है। पर अब मै मनुष्य बनूंगा।

रजनी ने कहा—अब ऐसी भूल कभी न होगी गुरुदेव, मैं जाकर आंसूओं से माताजी के चरण पखारूंगी, तब अवश्य ही उनका क्रोध शान्त होजायगा।

गुरुदेव-क्रोध न कह बेटी ! दर्द कह, वेदना कह। मां को सन्तान पर क्रोध नहीं आता। किन्तु जब सन्तान मां को जीते जी कब्र में दफनाने लगती है तब वेदना होने लगती है। तुझे वही दूर करना है।

रजनी—जरूर दूर करूंगी गुरुदेव ! आपने दया करके हम लोगों को आज इन्सान बना दिया है।

गुरुदेव--बनानेवाला तो सत्येश्वर है। मैं तो सिर्फ उसकी उंगली का एक इशारा हूं।

गुरुदेव को प्रणाम कर दोनो इन्सान बनकर चलेगये।

१४ चन्नी ११९६२ — सत्यभक्त

ता. १६-१२-६२ — गाजियाबाद (प्रवासमे)

१२६- अतिथि परिहार

शीतलप्रसाद जब भी सत्यनगर में आते थे तब गुरुदेव के दर्शन को भी जरूर आते थे। इसबार भी आये। प्रणाम करने पर गुरुदेव ने पूछा-कब आये शीतलप्रसाद, कहां ठहरे हो, सब कुशल तो है ?

शीतलप्रसाद ने कहा- कल शाम को आया था गुरुदेव, आपकी कृपा से सब कुशल है, एक होटल में ठहरा हूँ।

गुरुदेव—अच्छा ! अब की बार होटल में ठहरे ?

शीतलप्रसाद—क्या करू गुरुदेव, शीलचन्द्र जी को लिखा था, पर उनकी तरफ से इनकार गया कि कुछ अड़चनों के कारण यहां ठहरने की व्यवस्था न होसकेगी। अब उनके यहां एक दिन ठहरना भी भारी होगया।

गुरुदेव- अच्छा, तो बात यहां तक बढ़गई।

शीतलप्रसाद- क्या बात बढ़गई ! हमारे उनके बीचमें कभी कोई बात तो हुई ही नहीं। न कोई कहा सुनी, न कोई झगड़ा।

गुरुदेव- नहीं, यह बात तो नहीं है। शीलचन्द्र इतने गम्भीर और सहनशील है कि कहासुनी की तो नौबत ही नहीं आसकती। परन्तु कुछ मेहमानो के व्यवहार से तंग होकर शायद उनने इस अतिथि परिहार का रुख अपनाया है।

शीतलप्रसाद- मेहमान जब घर मे आते हैं तब कुछ परेशानी तो होती ही है पर दुनिया में ऐसा तो चलता ही है, इससे यदि अतिथि-परिहार किया जाने लगे तब सामाजिकता समाप्त ही होजाये।

गुरुदेव- सो तो शीलचन्द्र को सामाजिकता का ख्याल है। मेहमान अभी भी उनके यहां आते हैं। और इससे उनके घर

में प्रसन्नता ही बढ़ती है। हर मेहमान को वे मुझसे मिलाने लाते हैं। ऐसा कोई हफ्ता नहीं जाता जब वे एक दो मेहमान को मिलाने न लाते हों। इस विषय में कभी कोई असन्तोष भी नही मालूम हुआ। पर कुछ मेहमानों के बारे में जरूर उन्हें शिकायत है।

शीतल प्रसाद- उस नामवलि में क्या मेरा भी नाम है ?

गुरुदेव- नाम तो उनने किसी का लिया नहीं, सिर्फ उनके स्वभाव और कार्यों का ही उल्लेख किया था।

शीतलप्रसाद- तो वही बतादीजिये गुरुदेव ! इससे भी कुछ समझमें आजायगा।

गुरुदेव- कुछ लोग ऐसे होते है जो घर को परिस्थितिमे ठीक नहीं बैठते। उनकी फमाइशें असाधाण होती है। घरमे जो भोजन बनता है उसमें वे सन्तुष्ट नही होते। उनको माग कुछ कीमती चीजें खाने की होती है। सबको वे चीजें बनाई नहीं जासकती क्योंकि इससे बजट का संतुलन बिगड़ता है। उन्हें खास तौर पर प्रबन्ध करना पड़ता है इसलिए गृहिणी को परेशानी इतनी बढ़-जाती है कि जिसे वह रोज रोज सहन नही कर सकती। वर्षों में आनेवाले खासकर निमन्त्रित होकर आनेवाले किसी विशेष मेहमान की बात दूसरी है परन्तु जो ऐसे नहीं है वे तो तभी निभ सकते हैं जब घर की परिस्थिति में घर के आदमी को तरह फिट होजाय।

शीतलप्रसाद- यह तो ठीक है गुरुदेव ! मै तो ऐसा ही करता हूं। घर के आदमी को तरह बिलकुल बेतकल्लुफ रहता हूं, बल्कि बिलकुल निःसंकोच होकर मांग-मांग कर ले लेता हूं।

गुरुदेव- पर इतनी बेतकल्लुफी भी ठीक नही। होसकता है कि आप कोई ऐसी चीज मांगें जिसका इन्तजाम वे सरलता से न कर सकें या किसी कारण न करना चाहते हों तो उनकी परे-शानी बढ़ जायगी। मेहमान बोझल होजायगा। मागना वही चीज चाहिये जिसके विषयमें यह समझा जाय कि यदि हम न मांगेंगे तो

यजमान को खुद उसकी बार बार चिन्ता करना पड़ेगी। यजमान की चिंता बचाने के लिये मांगना चाहिये उसपर बोझ डालने के लिये नहीं।

शीतलप्रसाद- इतना बिचार तो मैंने नहीं किया गुरुदेव, इस विषयमें जरूर कुछ भूल होजाती थी। अब मैं खयाल रखूंगा। कोई और बात है?

गुरुदेव— एक बात यह है कि कुछ मेहमानों में बहुत कृतघ्नता होतीहै। जो कुछ मिलेगा उसके लिये धन्यवाद न देंगे या बिलकुल निर्जीव धन्दवाद देंगे, परन्तु दोष खूब निकालेंगे। क्या त्रुटि रहगई इसीका ढिंडोरा पीटेंगे। ऐसे मेहमानों को रखना पैसे और श्रम की बर्बादी ही नहीं है किन्तु अमृत मिट्टी मे मिलाकर विष पैदा करने के समान है।

शीतलप्रसाद— सचमुच यह बहुत बुरी बात है गुरुदेव! मेहमान को यह कार्य कदापि न करना चाहिये। ऐसी नीचता मैंने कभी नहीं दिखलाई।

गुरुदेव—तुमने न दिखलाई होगी किसी दूसरे ने दिखलाई होगी उसी को लक्ष्य में लेकर शीलचन्द्र ने इस बात का उल्लेख किया होगा, हालां कि ऐसी नीचता करते है बहुत से मेहमान।

शीतलप्रसाद— यह वास्तविक बात है गुरुदेव! सचमुच यह नीचता बहुतों में होती है। सौभाग्य से मुझमें नहीं है। और भी कोई बात है गुरुदेव!

गुरुदेव- है। कुछ लोग ध्वंस प्रकृति के होते हैं। वे घर की व्यवस्था और शान्ति नष्ट कर देते है। वे घरवालों में फूट डालदेते है, नौकरों को भड़कादेते हैं, उन्हें कृतघ्न उद्दंड और कामचोर बना देते हैं।

शीतलप्रसाद- ऐसा कैसे होता होगा गुरुदेव! सदा साथ रहनेवाले को कोई घंटे भर में कैसे बिगाड़ देगा। इतने दिन का

असर क्या घंटे भर में चला जायगा ?

गुरुदेव- किसी चीज़ को बनाने में देर लगती है, शक्ति भी लगती है पर बिगाड़ने में न देर लगती है न शक्ति लगती है। मूर्ति बनाने में वर्षों लगसकते है पर तोड़ने के लिये कुछ सेकिण्ड ही काफी हैं।

शीतलप्रसाद- उपमा तो ठीक है गुरुदेव परन्तु उपमेय अभी ठीक ध्यान मे नहीं आया। मेहमान कैसे थोड़े समय में किसी को बिगाड़ सकता है। उसके शब्दों में ऐसा जादू कहां से आगया ?

गुरुदेव- इसमे जादू की कोई बात नहीं है। अगर नौकर से यह कह दो कि तुमसे यहां ज्यादा काम लिया जाता है इतना तो कहीं नहीं लिया जाता। या जो कुछ तुम्हें यहां दिया जाता है उससे अधिक तो कहीं भी मिल सकता है। इतनी बात से नौकर कामचोर और असंतुष्ट होजायगा इसलिये ऐसी कोई बात मेहमान की हैसियत में होने पर कभी न कहना चाहिए। या यह कहदो कि हम तो नौकर को कुटुम्बी का तरह रखते हैं यहा तो तुम्हें दास समझा जाता है तब भी वह मालिक से असन्तुष्ट होजायगा। कोई कोई लोग यह कह देते है कि हम तुम्हें अच्छी नौकरी दिलादेंगे, या चलो हमारे यहां, वहां काफी काम है, निःसन्देह ये सब बाते मिथ्या होती है और सिर्फ नौकर से सहानुभूति प्राप्त करने के लिए कही जाती है पर गृहपति की परेशानी बढ़जाती है। नौकर अपने कर्तव्य के प्रति उदासीन लापर्वाह तथा घर के लोगों के प्रति उद्दंड होजाता है। इसप्रकार मेहमान जानबूझकर या अज्ञानकारी मे यजमान के साथ दुश्मनी का कार्य कर डालता है। कोई मेहमान नौकर को कुछ इनाम देकर या कुछ खिला पिलाकर अपनी तरफ इतना खींच लेते है कि वह गृहिणी के काम की पर्वाह नहीं करता। वह सोचता है कि गृहिणी की तरफ से बँधा हुआ वेतन मिलेगा ही, काम कम करो या ज्यादा, दिलसे करो या वेदिल से। मेहमान से

तो भेंट तभी मिलेगी जब उसका दिल से काम किया जायगा। इसप्रकार भी मेहमान नौकरों को कर्तव्य भ्रष्ट कर देते हैं। भला ऐसे मेहमानों को बुलाकर या रखकर कौन संकट मोल लेगा ?

शीतलप्रसाद— नहीं लेगा गुरुदेव ! कभी नही लेगा। ऐसी कुछ भूलें जरूर मुझसे हुई है। नौकरो को इनाम आदि से तो मैंने नहीं लुभाया पर बातों से जरूर भूल हुई है। यदि अजानकारी में हुई है तो मेरी शैतानियत हैं। मैं दोनो का शिकार रहा हूँ गुरुदेव ! यह ठीक ही था कि शीलचन्द्र जी ने मेरा परिहार या बहिष्कार किया। पर एक बात और जानना चाहता हूं ! क्या नौकरों को इनाम देना भी गुनाह है ?

गुरुदेव- है भी और नहीं भी। यदि नौकर का ध्यान अपनी तरफ इतना खींच लिया जाय कि वह घर के कार्यों के प्रति या घरवालों के प्रति शिष्टाचार मे उदासीन होजाय तो यह गुनाह है। यदि ऐसी सम्भावना न हो या इसका कोई चिन्ह प्रगट न होता हो तो गुनाह नहीं है। परन्तु अच्छा यह होगा कि नौकरों को इनाम गृहपति के हाथों दिलवाई जाय या गृहपति को ही दे दी जाय इससे व्यवस्था ठीक रहेगी।

शीतलप्रसाद- यदि गृहपति न लें, या लेकर भी नौकर को न दें तो ?

गुरुदेव- यदि गृहपति शिष्टाचार से इनकार कर रहा होगा तब तो दो तीन बार के आग्रह से लेलेगा, अथवा उसके सामने ही नौकर को इनाम देना ठीक होगा। यदि गृहपति इनाम लेकर नौकर को न भी देता हो तो भी मेहमानको सन्तुष्ट रहना चाहिये क्यों कि नौकर से जो सेवा उसने पाई है वह गृहपति के कारण पाई है इसलिये गृहपति का सन्तोष पहिली बात है। हो सकता किसी दूसरे मौकेपर गृहपति नौकर को इनाम देना चाहे। क्योंकि मेहमनो से इनाम मिलने पर नौकरों की आदत खराब होजाती है

इसलिये जो मेहमान इनाम नहीं देजाता या किसी कारण से देने लायक नहीं होता, या उसकी पूज्यता आदि के कारण इनाम नहीं लिया जासकता उसके प्रति नौकरों का रुख निन्दा का, उपेक्षा का होजाता है। इनसे बहुत से मेहमानों का अपमान होने लगता है इसलिए इनाम देने में बड़ी सतर्कता की जरूरत है। यह अपनी उदारता बताने का नहीं, गृहपति को सन्तुष्ट रखने का सवाल है।

शीतलप्रसाद- बहुत अच्छा खुलासा किया गुरुदेव! इस विषयमें मेरी हैवानियत शैतानियत दोनों ही दूर होगई। शीलचन्द्र जी के विषयमें भी मन साफ होगया। अब मैं उनसे स्पष्ट शब्दों में अपनी इन भूलों या गुनाहों के लिए माफी मांगूंगा।

शीतलप्रसाद गुरुदेव को प्रणाम करके चले गये।

२३ सत्येशा ११९६३ इ. सं. सत्यभक्त
ता. २३-१-६३ उदयरात्रि ३॥ बजे गाजियाबाद प्रवासमें

२७ ईश्वर और शैतान

उस दिन रामभक्त जी अपने एक सम्भ्रान्त मेहमान को लेकर गुरुदेव के पास आये। रामभक्त जी ने परिचय दिया कि ये हमारे मित्र प्रकाशचन्द जी अच्छे श्रीमान तो है ही, पर बड़े विचारक और धर्मात्मा भी हैं। पूरे आस्तिक होने पर भी ईश्वर के विषय में इनके मन का पूरा समाधान नहीं हो पारहा है। मैंने जब उन्हें आपका परिचय दिया तो आपके दर्शन के लिये बड़े उत्सुक होगये। और इसी विषय की जिज्ञासा लेकर ये आपके पास आये हैं।

गुरुदेव ने कहा- ईश्वर के विषय में पूरा समाधान होना तो अशक्य ही है। उसका काल अनन्त, उसका क्षेत्र अनन्त और उसकी सूक्ष्मता भी अनन्त है। हमारा पूरा समाधान तो तब हो जब हम उसका कहीं किसी तरफ अन्त पाजायँ। पर अनन्त का अन्त कैसे पाया जासकता है! इसलिये पूरा समाधान तो नहीं

होपायगा। फिर भी काम चलाऊ समाधान तो पाया ही जासकता है, ईश्वर की मान्यता से लाभ तो उठाया ही जासकता है।

प्रकाशचन्द्र बोले- परन्तु लाभ तो तब उठाया जाय जब उसके अस्तित्व में कोइ जबर्दस्त बाधक न मालूम हो। कम से कम उसकी सम्भावना भी ठीक मालूम हो।

गुरुदेव- हां! यह ठीक है। बहुतों के मन में बहुतसी बाधाएं हैं। आपको बाधा क्या है यह सुनकर उसपर विचार किया जासकता है।

प्रकाशचन्द्र- मेरा कहना यह है कि ईश्वर जब सर्वव्यापक है और समर्थ भी है तब संसार मे पाप और दुःख क्यो है? क्या ईश्वर से भिन्न कोई और शक्ति है जो ईश्वर के कार्य मे बाधा डालती रहती है।

गुरुदेव- यह प्रश्न बहुत पुराना और बहुत महत्व का है। ईसाइ आदि पाश्चात्य धर्मों में इसकेलिये शैतान की कल्पना की गई है। शैतान ईश्वर के काम में बाधा डलता है। हिन्दू धर्म में शैतान के स्थान पर माया की कल्पना है। अर्थात माया के चक्कर मे पड़कर मनुष्य इसप्रकार भूलता है।

प्रकाशचन्द- पर गुरुदेव, यह शैतान है क्या जो ईश्वर के काम में बाधा डालता है? क्या वह ईश्वर से भी अधिक शक्ति-शाली है?

गुरुदेव- बाधा डालने से ही वह ईश्वर से अधिक शक्ति शाली सिद्ध नहीं होता। क्योंकि शक्ति का पता निर्माण से लगता है संहार से नहीं। एक मूर्तिकार सुन्दर से सुन्दर कलापूर्ण मूर्ति का निर्माण करता है। इसमे उसे वर्षभर का समय लग सकता है और बहुत बड़ी योग्यता की जरूरत होती है। इसमें जितनी शक्ति खर्च होती है उसका हजारवां भी हिस्सा शक्ति मूर्ति तोड़ने में नही होती। शैतान की शक्ति ईश्वर से तुच्छ अतितुच्छ होने पर भी वह

बबंदी करता रहता है।

प्रकाशचन्द- पर गुरुदेव, शैतान है क्या?

गुरुदेव- शैतान सचमुच में माया है। उसका वास्तविक अस्तित्व कुछ नहीं है। दूसरे शब्दों में वह ईश्वर की अभिव्यक्ति का अधूरापन है। और भी स्पष्ट शब्दो में कहा जाय तो वह प्राणी में वास्तविक ज्ञान की कमी है, अज्ञान है।

प्रकाशचन्द- मनुष्य में जो असंयम है, पाप है, क्या वह ज्ञान की कमी है? अज्ञान है? क्या अज्ञान और पाप एक ही बात है?

गुरुदेव- नहीं, दोनों एक तो नहीं है; दोनों मे कार्यकारण भाव है। अज्ञान कारण है पाप कार्य है? कार्यकारण में सम्बन्ध होने पर भी दोनों मे अन्तर तो है ही।

प्रकाशचन्द- यदि हर जगह ईश्वर है तो हर जगह अज्ञान कैसे?

गुरुदेव- मानलो पवित्र और निष्पाप जीवन बिताने के लिये सौ अश ज्ञान की जरूरत है। पर किसी प्राणी में प्रगट हुआ सिर्फ दश अंश। तो नब्वे अंश ज्ञान की जो कमी है उसके कारण वह जीवन को पवित्र या निष्पाप नहीं बनापायगा। ज्ञान की जो यह कमी है वह अभावरूप है, इसलिये माया है, और यही शैतान है। पर जितने अंश मे ज्ञान-जैसे दस अंश ज्ञान है तो यही ईश्वर सच्चिदानन्द है। ज्ञान चित है इसलिये वह ईश्वर है। वह थोड़ा प्रगट हो या अधिक, है सब जगह इसलिये सब जगह ईश्वर है।

प्रकाशचन्द- पर पाप तो बड़े बडे विद्वान भी करते है। और उनकी अपेक्षा अल्पज्ञानी भी नहीं करते। तब ज्ञान का पाप से क्या सम्बन्ध?

गुरुदेव- दुनिया की अन्य जानकारियो से ज्ञान का मतलब

नहीं है। इन विषयों में बड़ा से बड़ा जानकार भी जीवन के विषय मे, आत्मा के विषयमें, ईश्वर के विषयमें, अज्ञानी होता है। इसलिए वह पाप से नहीं बचपाता।

प्रकाशचन्द- परन्तु ऐसे विद्वान भी पापी होते है गुरुदेव, जो आत्मा ईश्वर कर्तव्य शास्त्र आदि के पूरे जानकार हैं।

गुरुदेव- जिस ज्ञानपर हमें विश्वास न हो वह ज्ञान ज्ञान नहीं है। ज्ञान तो वहीं कार्य करता है जहां पर उसमें पक्का विश्वास हो। गधेपर लदी हुई शक्कर की तरह जो ज्ञान दिमाग पर लदा हुआ भार ही है, जो विश्वास के द्वारा जीवन मे पचा हुआ नहीं है, भिदा हुआ नही है, वह वास्तवमें ज्ञान नहीं है। वह न कर्तव्य में प्रेरणा देता है न पाप से बचाता है। जो धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को जीवन में उतारता है, व्यावहारिक बनाता है वही ज्ञान वास्तविक ज्ञान है। इस ज्ञान की कमी या इस जानकारी में विश्वास की कमी ही पाप की ओर झुकाती है इसलिए यही शैतान है यही माया है। यों यह निषेधात्मक होने से कुछ नहीं है, माया ही है, पर इससे जो सुख का निरोध होता है और सुखनिरोध से जो दुख बढ़ता है इसीसे इसे शैतान या माया कह सकते हैं।

प्रकाशचन्द- इस विषयमें तो बिलकुल नया प्रकाश पारहा हूं गुरुदेव! ईश्वर की अभिव्यक्ति में जो कमी है उसीसे अनेक भ्रम पैदा होते है और वही भ्रम पाप पैदा करता है। इस प्रकार ईश्वर सर्व व्यापक होने पर भी उसकी पर्याप्त अभिव्यक्ति सर्वत्र न होने से पाप दुःख आदि पैदा होते हैं। यह बहुत ही उपयुक्त समाधान है गुरुदेव, मैं तो आज कृतार्थ होगया।

गुरुदेव- बहुत ठीक समझा प्रकाशचन्द जी आपने। और अपनी समझ भी बहुत उपयुक्त शब्दों में प्रगट की।

प्रकाशचन्द- परन्तु इसके आगे कुछ जिज्ञासाएँ और पैदा होती हैं गुरुदेव! यदि ईश्वर ऐसा ही सर्वव्यापक है तो ऐसे

ईश्वरवाद में और अनीश्वरवाद में क्या अन्तर है ? और ईश्वर अल्लाह गॉड सत्येश्वर ब्रह्मा विष्णु महेश आदि रूपमें जो ईश्वर की मान्यता है उसका आधार क्या रहजाता है ? ईश्वर आदि का ऐसा व्यक्तित्व तो निराधारसा होजाता है । क्या इस प्रकार आकार देकर ईश्वर मानना, उसका दर्शन करना, उससे सन्देश लेना आदि ठीक है ?

गुरुदेव- ईश्वरवाद और अनीश्वरवाद मे जितना अन्तर समझा जाता है वास्तव में उतना अन्तर है नहीं । ईश्वरवाद का अर्थ यह है कि एक चेतनशक्ति है जो विश्व के कार्यकारणभाव, या पुण्यपाप फल का नियंत्रण करती है । और अनीश्वरवाद का अर्थ है कि यह सब कार्य जड़ शक्ति के द्वारा ही होजाता है । ईश्वर-वाद में महान चेतनशक्ति के सामने बड़ा से बड़ा व्यक्ति विनीत रहता है । वह उसका पैगम्बर भले ही कहलाये, विशेष गुण उतरने से अवतार भी कहलाये, पर उस सर्वोत्कृष्ट चित् शक्ति ईश्वर के सामने तुच्छातितुच्छ ही रहता है । अनीश्वरवाद में यह नियम नहीं रहता । अनीश्वरवादी अपने को तीर्थंकर आदि कहकर सर्वश्रेष्ठ मानलेता है । विनय के लिए उसके पास कोई गुंजाइश नहीं है । इसप्रकार अनीश्वरवादसे ईश्वरवाद कुछ अधिक हितकर होनेपर भी पुण्यपाप फल की व्यवस्था और अपनी जिम्मेदारी का भान दोनो से होजाताहै । हा ! ईश्वरवाद और अनीश्वरवाद दोनोके कुछ ऐसे रूप भी है जो जिम्मेदारी के भान में बाधक है । जहा ईश्वरवाद में यह मान्यता प्रवेश कर जाती है कि ईश्वर सत्कार्य की अपेक्षा अपनी स्तुति भक्ति चापलूसी से अधिक खुश होता है, पाप की इतनी चिन्ता नहीं है जितनी उसकी स्तुति आदि में कमी रहजाने की । ऐसा ईश्वरवाद घातक है । और वह अनीश्वरवाद भी घातक है जो सिखाता है कि जगत में अच्छे बुरे कार्य की कोई व्यवस्था नहीं है । यह घातकता न हो तो दोनों वादों से जीवन पवित्र बनाया

जासकता है।

प्रकाशचन्द्र– यह स्पष्टीकरण भी बहुत सुन्दर है गुरुदेव ! अब यह और बतला दीजिये कि ईश्वर को जो सरकार मानलेते हैं, उसे व्यक्तित्व देदेते है, उससे बातचीत करने का भी विवरण पेश कर देते है वह कहां तक ठीक है ?

गुरुदेव– वह भी ठीक है। निराकार को ठीक समझने के लिए बल्कि उसे व्यवहार में लाने के लिये साकार रूप देना ही पड़ता है। हम जो शब्द बोलते है उनका वायुमण्डल मे कैसा आकार बनता है कह नहीं सकते, हमारे लिए वे निराकार ही हैं। परन्तु उनका व्यवहार करने के लिए हमें उन्हें लिपि रूपमें साकार बनाना पड़ता है। इसे असत्य कहकर छोड़ा नहीं जासकता। ईश्वर को भी इसी प्रकार साकार रूप देना उचित है। इससे व्यवहार वास्तविक बनता है, लाभप्रद बनता है, प्रभावक बनता है। ईश्वर के साथ बातचीत की बात भी अनुचित नहीं है, क्योंकि इससे उसके कार्यो का विवरण पेश होता है। बातचीत में ईश्वर के मूक कार्यों को वाचा प्रदान की जाती है। वह उसके कार्यों के अनुरूप होने से सत्य ही समझना चाहिए। हां ! हो वह ऐसी जो उसके कार्यों के अनुरूप हो, जगत कल्याणकर हो। ईश्वर को व्यक्तित्व देने से मनुष्य की अनाथता दूर होती है, कर्मफल की आशा और धैर्य बढ़ता है, मन को तसल्ली मिलती है।

प्रकाशचन्द्र– बहुत धन्यवाद गुरुदेव ! आज आपने ईश्वर शैतान, ब्रह्ममाया ईश्वरवाद अनीश्वरवाद, साकार निराकार, व्यक्तित्वीकरण अव्यक्तित्वीकरण आदि का अभूतपूर्व स्पष्टीकरण कर दिया। इस स्पष्टीकरण से सारे सन्देशों का निराकरण होगया है। आपकी कृपा के लिये जितना धन्यवाद दिया जाय थोड़ा है।

यह कहकर गुरुदेव को प्रणाम करके प्रकाशचद्र विदा हुए।

२३–२–६३ गाजियाबाद (प्रवासमें)

२८ सुशासन

बहुत समय के बाद राष्ट्रके प्रधानमंत्री गुरुदेव से मिलने आये। प्रधानमंत्री के चेहरे पर चिन्ता की छाया थी। गुरुदेव ने जरा मुसकराते हुए कहा-पद प्रतिष्ठा अधिकार की इतनी ऊँचाई पर पहुँचने पर भी बहुत चिन्तित मालूम होते हो !

प्रधान मंत्री ने गहरी सांस लेकर कहा-मनुष्य का जो सहज अहंकार है वह इस उँचाई को छोड़ने नहीं देता परन्तु इसकी चिन्ता का बोझ और निष्फलता तथा निन्दा की चोटें दिल को सदा घायल किये रहती है। गुणगान होता है जरूर, पर वह सब भय या स्वार्थ के कारण. गुणानुराग से नहीं। इसलिए वह सब फीका मालूम होता है। बल्कि निष्फलता की लज्जा भी सताती रहती है।

गुरुदेव- कैसी निष्फलता ?

प्रधानमंत्री- शासन यदि सुशासन न बने, भ्रष्टाचार बढ़ता ही जाय, लोगों का असन्तोष ही बढ़ता जाय तो इसे निष्फलता ही कहना चाहिए। और यह लज्जा की बात ही है।

गुरुदेव- तब इसे हटाने की कोशिश क्यों नहीं करते ?

प्रधानमंत्री- कैसे करूं ? शासन की सारी मशीन तो पुरानी ही है।

गुरुदेव- आपके हाथ में सत्ता आए हुए भी तो बहुत दिन होगये. इस समय में तो आधे से अधिक आदमी आपके द्वारा ही उस शासन मशीन में पहुँचे होंगे। क्या इतने नये आदमियों के द्वारा भी शासन मशीन में कुछ सुधार नहीं हुआ ?

प्रधानमंत्री- नहीं हुआ; बल्कि बिगाड़ हुआ। जनतंत्र के कारण भाई भतीजावाद बहुत फैला। इसलिये पहिले की भी अपेक्षा

अयोग्य आदमी बहुत पहुँचे। और किसी न किसी जनतंत्री नेता का सहारा होने के कारण वे भ्रष्टाचार में निर्भय रहे। पुराने लोगों का भ्रष्टाचार ये लोग क्या रोकते, उल्टे भ्रष्टाचार में उनसे बाजी मारने लगे।

गुरुदेव- तब आपके प्रधानमंत्री होने का क्या अर्थ हुआ?

प्रधानमंत्री- पर मैं अकेला कहां कहां क्या क्या कर सकता हूं। कहां कहां नजर रख सकता हूं।

गुरुदेव- सिकन्दर को एक वृद्धा ने जो उत्तर दिया था आपको उसका ध्यान रखना चाहिए। उसकी शिकायत पर जब सिकन्दर ने यह कहा कि उतनी दूर की घटनाओं पर मैं क्या कर सकता हूँ तब वृद्धा ने यही कहा कि- बेटा, जब उतनी दूर के लिये कुछ नहीं कर सकते तब उतनी दूर तक राज्य बढ़ाते क्यों हो? काम तो उतना ही हाथ में लेना चाहिए जितना सम्हल सके।

प्रधानमंत्री— पर इतने बड़े जनतंत्र को क्या तोड़ दूं? क्या तोड़ना मेरे वश में है?

गुरुदेव- तोड़ने की जरूरत नहीं है या तो छोडने की जरूरत है या सुधारने की। आप दोनों ही काम कर सकते हो।

प्रधानमंत्री— छोड़ तो सकता हूं पर सुधार कैसे सकता हूं? अकेले मुझ से क्या होगा? और भी तो नेताओं की फौज है।

गुरुदेव- है! पर उनमें इतना निर्लज्ज कोई नहीं है जो भ्रष्टाचार का समर्थन करता हो या भ्रष्टाचार के विरोध में जो कार्रवाई की जाय उसका समर्थन न करे।

प्रधानमंत्री— यह ठीक है, पर जनतंत्र का क्या होगा?

गुरुदेव- क्या जनता भ्रष्टाचार का समर्थन करती है?

प्रधानमंत्री- आम जनता नहीं करती। पर उनमें ऐसे लोग भी हैं जो भ्रष्टाचार को बढ़ावा देते हैं, रिश्वत देकर लाभ उठाते

हैं ।

गुरुदेव- रिश्वत देते नहीं पर उन्हें देना पड़ती है । जब आपके कर्मचारी ऐसी नीति बना लेते है कि जब तक रिश्वत न मिले तब तक काम न करना, या इतना बिगाड़कर करना कि लोगों को रिश्वत से भी अधिक हानि सहना पड़े तो वे रिश्वत देने के लिए विवश होजाते हैं । जब वे देखते हैं कि रिश्वत देकर पीछेवाला आदमी उनसे बहुत आगे निकल गया तब उन्हें अपनी ईमानदारी के लिए पछतावा होने लगता है और वे भी भ्रष्टचार को बढ़ावा देने लगते है ।

प्रधानमंत्री- तो इसके लिए मैं क्या करूं ? क्या सभी नौकरो को निकाल दूं ? अपने सब साथियो को भी छोड़ दूँ ? तब किसके बलपर मैं प्रधानमंत्री रहूंगा ? सत्ता विरोधी दल के हाथ मे देना पड़ेगी । पर वे हमसे अच्छे निकलेंगे इसकी भी तो आशा नही हैं ।

गुरुदेव- विरोधी दल के विषयमे सोचने की जरूरत नहीं है । सम्भव है वे और भी खराब साबित हों, या अच्छे भी साबित हों । सवाल अपने हाथ से शासन सुधारने का है । सो वह सुधारा जासकता है । क्या आपको जनता का पीठबल प्राप्त है ?

प्रधानमंत्री- है ।

गुरुदेव- तो क्या आप समझते है कि भ्रष्टाचार के विरोधमें बड़ा कदम उठाने की बात से जनता का पीठबल समाप्त होजायगा ?

प्रधानमंत्री— ऐसा तो कैसे होगा ! जनता तो प्रसन्न ही होगी । पर साथियों के बारेमे नही कह सकता । बाहर तो वे भी प्रसन्नता व्यक्त करेंगे पर भीतर की कौन जाने ?

गुरुदेव- बहती गंगा में हाथ सभी धोना चाहते है । जब चारों तरफ भ्रष्टाचार की लूट मची हो तब वे भी अछूते कैसे रहें ।

पर अपना चरित्र आदर्श रखना चाहिये। यदि अपने में भाईभतीजावाद का कण भर भी आयगा तो दूसरों मे मन भर आजायगा। अपने चरित्र की छाप दूसरो पर लगने पर वातावरण मे पवित्रता आजाती है। फिर दृढ़ता से काम लिया जाय तो सब सुधार किया जासकता है।

प्रधानमंत्री– मेरे चरित्र में तो कोई खास खराबी नहीं है कुछ निकट सम्बन्धी है तो निकटता के नाते या गुरुजन के नाते उनके उत्थान का ध्यान रखना पड़ता है।

गुरुदेव– योग्यता बढ़ाने के लिये जो कोशिश की जाय उसमे तो कोई हानि नहीं है पर उन्हें पदादि देते समय इस बात का ध्यान रहे कि वह उनकी योग्यता से अधिक न हो। उनसे भी अधिक योग्यो का अवसर न छीन लिया जाय। अपने लोगों के विषय मे पक्षपात का पता यदि लोगों को लगगया तो हजारों लाखों का चरित्र बल गिर जायगा।

प्रधानमंत्री– यह बात विचारणीय तो है। इस विषय में मेरा चरित्र आदर्श तो नहीं कहा जासकता। सम्भवत: इससे भी कुछ नुकसान हुआ है। पर समस्या का यह मुख्य रूप नहीं है।

गुरुदेव– मुख्य रूप तो नहीं है, पर इस कमजोरी से दूसरों पर अंकुश रखने की जो क्षमता कम होजाती है वह समस्या के मुख्य रूप को भी हल नहीं होने देती।

प्रधानमन्त्री– ठीक है, मै इस कमजोरी को दूर करने की कोशिश करूंगा फ़िर भी लाखों कर्मचारियों की रिश्वतखोरी या भ्रष्टाचार को कैसे रोक सकूँगा। अब तो उन्हें खून लगगया है। शिकर छीनते ही गुर्राने लगेंगे।

गुरुदेव– चोर की इतनी हिम्मत नहीं होती जितनी आप समझते है।

प्रधानमंत्री– पर जो लाभ आज तक वे उठाते रहे हैं वह छीनते ही रूापेक्षवाद के अनुसार उन्हें दर्द तो होगा ही । और उसकी प्रतिक्रिया उनकी कार्यक्षमता पर प्रभाव डालेगी ।

गुरुदेव– पर इसी सापेक्षवाद से उनका इलाज भी किया जासकता है, उनकी कार्यक्षमता बढाई जासकती है ।

प्रधानमंत्री– सो कैसे ?

गुरुदेव– आज जो वे लूट रहे हैं उसके छिनने से उन्हें हानि का अनुभव होगा । परन्तु यदि उहें नौकरी से अलग कर दिया जाय तो उन्हें जो हानिका अनुभव होगा उसके बाद उन्हें ऐसी नौकरी मिलजाय जिसमे ऊपरी आमदनी न भी हो तो भी बाजारू मूल्य से अधिक पाने का सुखानुभव वे करेंगे ।

प्रधानमंत्री – क्या उन सब को नौकरी से निकाल दिया जाय ? शासन का सारी मशीन रोककर अराजकता लादी जाय ?

गुरुदेव— अराजकता लाने की जरूरत नहीं है । किन्तु एक आचार संहिता बनाने की जरूरत है । जिसमे भ्रष्टाचार के सब तरीकों का स्पष्ट निर्देश करके रिश्वत को विवश किया जाता है, किसप्रकार साधारण बहानोंसे काम में देर लगाई जाती है, किसप्रकार काम बिगाड़ा जाता है किसप्रकार जनता को बार बार भटकाया जाता है; पांच मिनिट के काम को पांच महीने लगादिये जाते है, भ्रष्टाचार के इन सब रूपो को जो त्याग सके उसी की नौकरी कायम रक्खी जाय बाकी को नौकरी से हटा दिया जाय । मतलब यह कि सभी कर्मचारियो की पुनर्नियुक्ति की जाय । जो भ्रष्टाचार विरोध की शर्तें पूरी तरह पालन करें उन्हें फिर नियुक्त किया जाय, बाकी जो कर्मचारी शर्तें पूरी न करें या जिनका चरित्र सन्देहास्पद हो उन्हें नियुक्त न किया जाय, उनके स्थान पर शर्तें पालने वाले लोगों की नई नियुक्त की जाय । इसप्रकार शासन की सारी मशीन को एक

तरह से नया बनाया जाय तब भ्रष्टाचार रुक जायगा ।

प्रधानमंत्री- पर स्थायी नौकरों को इस तरह कैसे निकाला जासकता है ? यह तो संविधान के विरुद्ध है ।

रुदेव- पर संविधान सुशासन के लिये है, सुशासन संविधान के लिये नहीं है । संविधान का जो रूप सुशासन में बाधा डाले वह बदल देना चाहिए । संविधान बदला या सुधारा जासकता है ।

प्रधानमंत्री- हां ! प्रबल मत हो तो बदला या सुधारा जासकता है ।

गुरुदेव- क्या आप सोचते हैं कि देश के प्रतिनिधि इतने निर्लज्ज है कि भ्रष्टाचार के विरोध के लिये नई व्यवस्था के लिये मत न देंगे ?

प्रधानमन्त्री- मनमें कुछ भी हो पर इतनी निर्लज्जता बतला तो नहीं सकते ।

गुरुदेव— बस ! तो उनकी इसी लज्जा का सदुपयोग कीजिए । अपने भी कणभर स्वार्थ का बलिदान कीजिए । फिर देखिए दूसरों का मनभर भ्रष्टाचार कैसे नहीं रोका जासकता ! जनतंत्र का अर्थ भ्रष्टतंत्र निरंकुश तंत्र अराजक तंत्र या धूर्ततत्र तो नहीं है । जनतंत्र की ओट मे शैतानियत को प्रश्रय नहीं दिया जासकता । अन्यथा आज नहीं तो कल अधिनायक तंत्र आजायगा । जनतंत्र में हजारो लाखों अफसर अधिनायक की तरह यदि जनता को रोसा करें तो जनता ऐसे जनतत्र की अपेक्षा अधिनायक तंत्र को पसन्द करेगी ।

प्रधानमन्त्री- ठीक है ! कोशिश करता हूं आपकी सलाह पर चलने को ।

२८-३-६३ गाजियाबाद (प्रवासमें)

—

२९– समस्याएँ

विजयसिंह ने गुरुदेव को प्रणाम कर कुछ बेचैनी से कहा– गुरुदेव, समझ में नहीं आता कि मनुष्य समस्याओं के पीछे क्यों पड़ा है ! समस्याओं का अन्त आ ही नहीं सकता । एक को सुलझाओ तो दूसरी सामने आजाती है । उसे पूरी करो तो तीसरी । तब क्यों उनके लिये परेशान हुआ जाय ?

गुरुदेव– यह सब स्वाभाविक है, आवश्यक है, उचित है । साधारणत इमसे घबराने की बात नहीं है । पर आज तुम घबराये हुए हो । भला कहो तो किसकी समस्या ने तुम्हें बेचैन कर दिया है ?

विजयसिंह– किसको बताऊं ! हर एक की तो समस्याएँ हैं । और एक के बाद एक खड़ी होती जाती हैं । अपनी निम्मी को ही लेता हूं । उनके पैदा होने के बाद उनके पालन पोषण और शिक्षण की समस्या थी । वह पूरी हुई तो विवाह की समस्या आगई । किसी तरह उसका विवाह हुआ तो छह माह में ही विधवा होगई तो फिर समस्या आगई । खैर ! उसका फिर विवाह किया तो उसकी सन्तान की समस्या आगई । अब प्रसूति के लिये वह घर आगई है और आज उसके पेट में दर्द है । आज उसी की चिन्ता है । कहां तक इन समस्याओं से निबटा जाय !

गुरुदेव— सामने एक बड़ा भारी पत्थर पड़ा है. देख रहे हो ?

विजयसिंह– देख रहा हूं गुरुदेव, वर्षों से देख रहा हूं । पर उससे क्या मतलब है आपका ? और मेरी बात से क्या सम्बन्ध है उसका ?

गुरुदेव– यही कि उसकी कोई समस्या नहीं है ? न उसके लड़की हुई, न उसे शादी करना पड़ी, न किसी के विधवा होने की चिन्ता हुई । यहां तक कि न उसके सामने खाने-पीने की समस्या है, न वर्षा धूप में छत्री की समस्या, न ठंड में वस्त्रों की समस्या । वह —न चिन्ताओंसे परम मुक्त है । क्या ऐसा पत्थर बनना पसन्द करते [illegible]र कोई समस्या न रहेगी ।

विजयसिंह- पर वह तो जड़ है गुरुदेव, मैं चेतन हूं। चेतन जड़ बनना कैसे पसन्द करेगा ?

गुरुदेव- तो झाड़ बनजाओ ! वह चेतन है। उसके सामने कोई समस्या नहीं है। उसमें परिवर्तन होते हैं पर इसकेलिये उसे चिन्ता नहीं करना पड़ती। और भी छोटे बड़े जानवर हैं वे पैदा होते हैं, खाते पीते हैं, मरजाते हैं। उनके सामने कोई समस्या नहीं होती। जो भी कष्ट आता है भोग लेते हैं, नहीं भोगा जाता तो मर जाते हैं। चिन्ता नहीं करते। भविष्य के सुख दुःखकी चिन्ताओं का उनपर बोझ नहीं पड़ता। क्या तुम समझते हो कि मनुष्य इन योनियों में चलाजाय तो वह अधिक सुखी होगा ?

विजयसिंह- झाड़ या पशु बनने को तो जी नहीं चाहता गुरुदेव ! पर इन समस्याओं को सुलझाते रहने को भी जी नहीं चाहता। जैसा चलता है वैसा क्यों न चलने दिया जाय ? परिवर्तन की चिन्ता क्यों की जाय ?

गुरुदेव- इसलिए कि मानव का विकास इसी तरह हुआ है, मनुष्यके सुख इसी तरह बढ़े हैं। तुमने निर्मला की बात कही। अगर उसकी शादी की चिन्ता न करते तो शादी न होने से जो परेशानियाँ होतीं वे शादी की चिन्ता की परेशानियों से कम होतीं या ज्यादा ? अगर सन्तान न हो या सन्तान होने की चिन्ता पुरुष न करे तो मनुष्य जाति जिस प्रकार पशुता की ओर बढ़ जाय. अकेली नारी पर सन्तानका बोझ पड़ने से जो सन्तान की दुर्दशा हो, और सन्तान में पुरुष भी होता है उसकी जो दुर्दशा हो, उससे सारा समाज पशुओं का झुंड बनजाय। इस प्रकार समस्याओं पर उपेक्षा करने से जो भयंकर परिणाम होंगे उनकी वेदना की अपेक्षा समस्याओं को सुलझाने की वेदना न कुछ के समान है। इतना ही नहीं, समस्याएँ ही जीवन की उपयोगिता बतलाती हैं और एक तरह से आनन्द भी बढ़ाती हैं ?

विजयसिंह— इसमें आनन्द क्या है गुरुदेव ?

गुरुदेव— इसका आनन्द तुम यों न समझोगे । इसे समझने के लिये कल्पना करो कि तुम ऐसे द्वीप में रखदिये गये जहां दूसरा कोई नहीं है, पर खाने पीने आदि को सामग्री भरपूर है। कोई न होने से न किसी के साथ झगड़ा है न प्रेम है। न कोई समस्या है। ऐसे एकान्त द्वीप में तुम कितने दिन रह सकते हो ?

विजयसिंह- एक भी दिन नहीं।

गुरुदेव— इसका मतलब यह कि तुम्हें समाज चाहिये, लोगों से आपसी सम्बन्ध चाहिये। परस्पर सहयोग भी एक समस्या है। जब तुम सहयोग देते हो तब तुम्हारे लिये समस्या बन जाता है। जब सहयोग लेते हो तब दूसरोंके लिये समस्या बन जाती है। इसलिये समस्याएँ तो रहेंगी। जरूरत इस बात की है कि वे सुलझती रहें और उत्तरोत्तर उनकी उग्रता कम होती जाय।

विजयसिंह- पर क्या उग्रता कम हो रही है गुरुदेव ?

गुरुदेव- हो रही है। किसी जमाने में जब कोई राजा मरता था उसके साथ उसकी रानियाँ, दासदासियाँ, जिन्दी दफना दी जाती थीं। जिससे परलोकमे राजाको यह सब वैभव तुरंत मिलजाये। आज इस नरक की कल्पना से ही कंपकपी छूटने लगती है। भारतमें भी पति के साथ स्त्रियां जिन्दी जल जाती थीं। पर यह सब नरक समाप्त होगया है। यह ठीक है कि इसके साथ विधवाओं की समस्या आगई है। पर जिन्दा दफनाने और जिन्दी जलाने की समस्या से यह कम है। और उसको हल करने के लिये विधवा विवाह का प्रचार किया गया, तब उनके विवाह की एक समस्या बनगई। पर आजीवन वैधव्य से यह समस्या कम है इस प्रकार समस्याएं तो आती जाती हैं पर उनकी उग्रता कम होती जाती है। पूर्ण सत्य या पूर्ण सुख तक मनुष्य भले ही न पहुँच सके पर वह उनके नजदीक होता जाता है।

विजयसिंह- बात तो ठीक है। पर साधारण लोग इसे

समझते क्यों नहीं ? खुद मेरी समझमें भी यह बात नहीं आई थी।

गुरुदेव- प्राचीनता का मोह। उसके कारण सुधार या क्रान्ति के प्रति उपेक्षा या प्रच्छन्न घृणा। सुधार की बातों का जब तर्कयुक्त विरोध हो नहीं सकता तब मनुष्य इसी तरह बहस करने लगता है। वह पुरानी सफलताओं को भुलादेता है। वर्तमान के दुःखोंको वह इस तरह बढ़ाचढ़ाकर पेश करता है कि अतीत का नरक भी उससे हलका मालूम होता है। उसके मनमें भूतभक्ति के संस्कार छिपे रहते हैं इसलिये वह समस्याओं को सुलझाने के ही खिलाफ हो जाता है। सुबह खाकर हल करो तो शाम को फिर खड़ी होजाती है। पर इसीलिये सुबह का खाना बन्द नहीं किया जाता। यही सोचकर सन्तोष किया जाता है कि चलो, दिनभर के लिये समस्या सुलझी। शाम को फिर देखा जायगा। यही हाल समाज का है। समाज की समस्याएँ सुलझाई जाती हैं। कुछ समय तक उनसे आराम मालूम होता है बाद में फिर समस्याएँ खड़ी होती हैं उन्हें सुलझाया जाता है। इस प्रकार मनुष्य दुःखोंको हटाता रहता है और अधिक दुःख से कम दुखकी ओर, कम सुख से अधिक सुख की अवस्था में पहुँचता रहता है। इसलिये परिवर्तन सुधार क्रान्ति आदि की सदा जरूरत है। उसकेलिये प्रयत्न करते रहना चाहिये। इस प्रयत्न से ही मानव जीवन की सार्थकता है। अन्यथा वह भी पशु ही होता और हजारों वर्ष पहिले जो उसकी अवस्था थी उसी अवस्था में होता। प्राचीनता मोह के कारण ऐसे बहाने बनाना और सुधार का विरोध करना अपने को धोखा देना है।

विजयसिंह- समझा गुरुदेव ! समस्याओं की समस्या आपने ठीक ढंग से सुलझा दी।

गुरुदेव- समस्याओं को सुलझाने मे जीवन की सार्थकता समझो। बस ! आनन्द ही आनन्द है।

२७ इंगा ११९६३ इ. सं.

११-८-६३

सत्यभक्त
गाजियाबाद (प्रवास में)

★ स्वामी सत्यभक्त ★



"संसार में स्वर्ग की सामग्री भरी पड़ी है फिर भी संसार नरक बना हुआ है यह मेरी सब से बड़ी वेदना है । इसे दूर करने के लिये मैं इस संसार को स्वर्ग के समान बनाना चाहता हूं । जिसमे मनुष्यमात्र की एक जाति हो, विज्ञान से समन्वित सत्यधर्म हो, सारी दुनिया का एक राष्ट्र हो, सब की एक मानवभाषा हो, नर नारी मे परस्पर गौरव युक्त तादात्म्य हो । सरकार शासक नही सेवक हो। साधु भगोड़े नहीं प्रेमी सेवक हो । स्वर्ग और मोक्ष मिले जुले हों और यहीं हो। – सत्यभक्त".

सत्यभक्त साहित्य

सत्यभक्त साहित्यमे सत्य और कलाका पूर्ण समन्वय हुआ है ।

सत्यभक्त सहित्य किताबो को पढ़कर नही, दुनियाको पढकर लिखा गया है । वह तर्क तथा अनुभवोका निचोड है ।

सत्यभक्त साहित्यमे हरएक बात नये तरीकेसे नये दृष्टिकोणसे कही गई है ।

सत्यभक्त साहित्यमे सास वहू भाई भतीजे मित्र पडौसी आदिकी समस्याओ से लेकर विश्वकी बडी से बड़ी समस्याएँ सुलझाई गई है ।

सत्यभक्त साहित्य इतने सरल ढग से लिखागया है कि साधारण पढ़ालिखा व्यक्ति भी उसे समझ सकता है ।

सत्यभक्त साहित्य मे– इतनी मौलिक ज्ञान सामग्री भरी है कि वह बड़े से बड़े विद्वानोंके भी अध्ययन करने योग्य है ।

सत्यभक्त साहित्य मे जो कुछ कहा गया है वह सब व्यवहार मे उतारने-लायक है । अव्यवहार्य बातोका प्रतिपादन उसमे नही है ।

सत्यभक्त साहित्य मे हर एक बात का विवेचन करते समय इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि उससे विरुद्ध पक्षपर उपेक्षा न होजाय । किसी बातका एकाँगी विवेचन नही किया गया ।

सत्यभक्त साहित्य की भाषा प्रसाद गुण युक्त है ।

सत्यभक्त साहित्य मे उपन्यास, कहानियाँ, लघुकथाएँ, चुटकिले, नाटक एकाकी, काव्य, गीत निबन्ध, पत्र, प्रश्नोत्तर, सूक्तिसग्रह, सार-संग्रह, आलोचनाएँ, संस्मरण, आत्मकथा; यात्रा- वृत्तान्त, डायरी और बड़े बडे सदर्भ ग्रथ हैं ।

सत्यभक्त साहित्य मे– धर्म, दर्शन समाजशास्त्र, राजनीति, अर्थशास्त्र, इतिहास, विज्ञान, भाषा शास्त्र, आदि अधिकाश महत्वपूर्ण विषयो पर नये दृष्टिकोणसे मौलिक विवेचन किया गया है ।

सत्यभक्त साहित्य के कुछ ग्रथ मराठी गुजराती कनड़ी तेलगु बर्मी नेपाली भाषामें भी छपे है । अंग्रेजी आदिके लिये भी योजना होरही है

सत्यभक्त साहित्यपर उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा १,२००) का प्रथम पुरस्कार मिल चुका है ।

धर्म और समाज

सत्यामृत दृष्टिकाड	५ – ००	धर्मसमीक्षा	१ – ४०
,, आचारकाड	५ – ००	जैन धर्म मीमासा (१) ×	१ – ५०
,, व्यवहार काड ×	५ – ००	,, (२)	२ – ००
जीवनसूत्र	० – ७०	,, (३)	२ – ००
सत्यसूत्र	० – ७०	न्यायप्रदीप	१ – ००
ईमान	० – ५०	शास्त्रान्धता	० – ३०
सूरजप्रश्न	० – ८७	आर्यसमाज समीक्षा	० – १९
प्रकाश की राह मे	१ – ००	ईसाई वहाई समीक्षा	० – ४४
धर्म समभाव	० – ७५	जैनो से	० – ४०
विवाह पद्धति	,, – २५	मुसलिम भाइयो से ×	० – २०
सुखशान्तिमयससार	० – ०६	हिन्दू भाइयो से	० – १६
साधु शिक्षा	१ – ००	मुसलमानो से	० – १६
सस्कृति समस्या	१ – ५०	हिन्दू मुसलिम मेल	० – १९
एकता की समस्या	० – ५०	ईसाई धर्म	० – ३७
सन्तान समस्या	० – २५	सत्यसमाज	० – ३७
सुलझी गुत्थियाँ ×	० – ५०	सत्यसमाजी जीवन	० – १९
क्या ईश्वर खुदा खुदखोर है ×	० – ४०	सत्यसमाजी क्यो बने	० – २५
क्या ससार दुःखमय है ×	० – २५	अननोल पत्र	० – ४४

कथा, नाटक, यात्रा

सुख की खोज	१ ००	नागयज्ञ (नाटक) ×	१ ५०
अग्निपरीक्षा	० ७५	नयाससार	१ ५०
नरक स्वर्ग के चित्र	२ २५	महावीर का अतस्तल	४ ००
गुरुदेव का शिक्षणालय	२ २५	बुद्ध हृदय ×	० ५०
सागर मे सागर	० ७५	सत्यलोक यात्रा	१ ५०
चतुर महावीर ×	१ ००	मेरी आफ्रिका यात्रा	४ ००
महात्मा राम	० २५	आत्म कथा	२ ००
मन्दिर का चबूतरा	० ७५	शीलवती	० १६
क्यों सलाम करूं ×	० १९	स्वामी सत्यभक्त	० १६

इन्द्रधनुष (छप रहा है)

काव्य गीत

दिव्य दर्शन, महाकाव्य	३	००	वन्दना	०	६[illegible]
सत्येश्वर गीता	२	५०	बोधगीत	०	५०
कृष्ण गीता ×	१	५०	भावगीत	०	५०
सत्यनारायण कथा	०	३५	गीतावलि	०	४५
पैगम्बर गीत	१	५०	कव्वालियाँ	०	२५

राजनीति, अर्थशास्त्र

राजनीति समस्या	०	८७	शासनसुधार	०	२५
मार्क्सवाद मीमांसा	१	२५	सत्ययुग आया	०	४०
निरतिवादी अर्थशास्त्र	१	५०	मानवराष्ट्र	०	१६
निरतिवाद	०	७५	दलातीत सरकार	०	१२
सुराज्य की राह	०	१९	विश्वशान्ति का अमोघ उपाय	०	४५
राजभाषा समस्या	०	२५			

विज्ञान, भाषा, इतिहास

मानवभाषा	२	००	उपकारी विज्ञान	०	१९
लिपिसमस्या ×	०	२५	विश्वरचना	०	७५
इतिहास शुद्धि की प्रस्तावना	०	३०			

अन्य भाषाओं में सत्यसाहित्य

वर्मी— बुद्ध हृदय

तेलगु— ,,

नेपाली— ,,

कनडी-- १ नागयज्ञ, २-- तरला (मन्दिर का चबूतरा)

गुजराती- १ सत्यसमाज २ मन्दिरनो चबूतरो ।

मराठी- बिन्दूत सिन्धू (गागर मे सागर)

उर्दू- हिन्दू मुसलिम इत्तहाद (हिन्दू मुसलिम मेल)

नोट-- वर्मी तेलगु नेपाली कनडी का साहित्य सत्याश्रम मे नही मिलता। जिनपर यह × निशान लगा है वे पुस्तके उपलब्ध नहीं है।

संगम (मासिक)

धर्म समाज राजनीति अर्थशास्त्र भाषा आदि विभिन्न विषयो [illegible] लेख कविताएँ कहानियाँ व्यंग लहरे, आदि से पूर्ण स्वामी सत्यभक्त जी [illegible] सन्देश देनेवाला प्रभावक मासिक। वार्षिक मूल्य उपहार सहित ४)